(मासिक)

आर्य जनता
का
प्रतिनिधि प्रकाशन

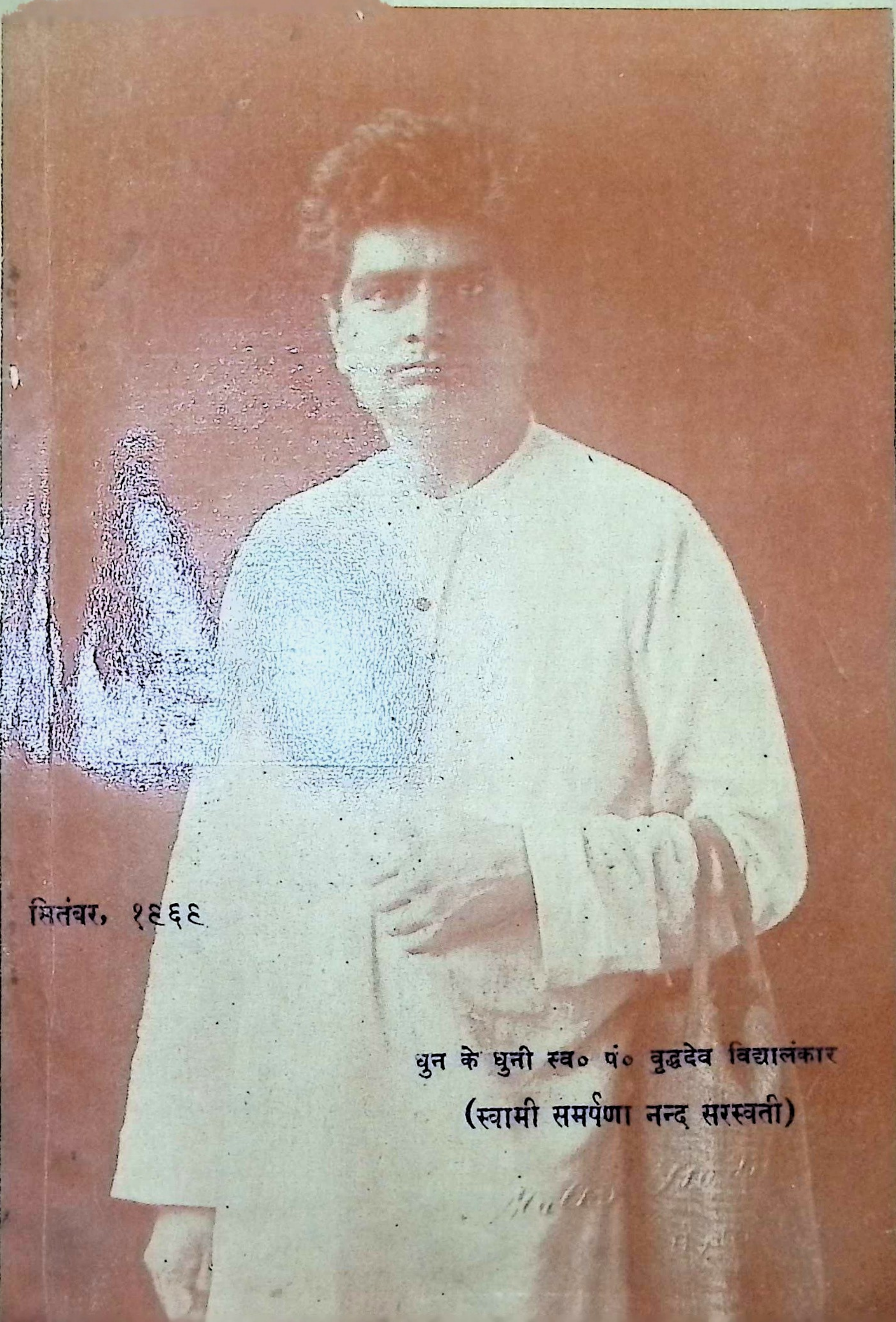

सितंबर, १९६९

धुन के धुनी स्व० पं० बुद्धदेव विद्यालंकार
(स्वामी समर्पणा नन्द सरस्वती)

आर्य समाज में जो गिने चुने विद्वान निरंतर साहित्य साधना में रत हैं उन में से एक हैं—

आचार्य श्री वैद्यनाथ शास्त्री
एम० ए०

आप की विद्या और महर्षि के प्रति निष्ठा निर्विवाद है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वैदिक अनुसंधान के अध्यक्ष के रूप में आप ने जो कार्य किया है वह प्रत्येक दृष्टि से अनुकरणीय है। "जन-ज्ञान" श्रद्धा सहित ऐसे आर्य विद्वान का सादर अभिनन्दन करता है।

—संपादक

दिल्ली की प्रसिद्ध आर्य समाज दीवान हाल के उत्साही मंत्री

श्री पुरुषोत्तम दत्त

आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रसार में गहरी निष्ठा और प्रबल प्रयत्नों की भावना आप की अपनी विशेषता है। साहित्य-प्रसार यज्ञ में जन-ज्ञान को आप का अपूर्व सहयोग सदाप्राप्त रहा है। आपके कार्य सभी के लिए अनुकरणीय हैं।

—संपादक

दयानन्द का काम पूरा करेंगे

उसी के लिए हम

जियेंगे मरेंगे

—जन ज्ञान

हमने महर्षि दयानन्द का काम पूरा करने का संकल्प लिया है। हम तब तक संघर्ष करते रहेंगे जब तक दयानन्द के दिव्य स्वप्नों का ऐसा संसार नहीं बन जाता।

"जिसमें जन्म से मृत्यु पर्यन्त धरती का प्रत्येक मनुष्य मुस्कराता रहे।" ऐसी समाज, राज्य, न्याय व्यवस्था स्थापित हो कि यह धरती स्वर्ग बन जाए।"

हमें न राज्य पद चाहिए न कोई अधिकार, हम दयानन्द लक्ष्य की पूर्ति में प्राणों की अंतिम सांस तक लगे रहें। प्रलोभन, स्वार्थ और भय हमें पथ से भटका न सकें, यह हमारी प्रभु से निरन्तर प्रार्थना है।

प्रभु की अमर वाणी "वेद" की भावनाओं का चक्रवर्ती साम्राज्य धरती पर आए अज्ञान का अंधकार समाप्त हो, मत-वाद और जाति भेद की दीवारों का अस्तित्व भूमंडल से मिटा दिया जाए। यह हमारी संकल्प-साधना है।

जागरण के स्वर शांति के लिए क्रांति का सिंहनाद कर रहे हैं, आसुरी आंधियों के अंधड़ शंख ध्वनि सुन कांप रहे हैं। धरती का निर्माण नयी दिशा साधना ज्योति से करने का दिव्य संकल्प लेकर······

प्रभु पुत्रो ! हमारे साथ आओ, दयानन्द के सच्चे सैनिक बनकर, सोचो······ कि आप **"महर्षि दयानन्द की जय"** के लिए क्या कर सकते हैं—

—भारतेन्द्र नाथ

१ नवंबर तक ५००० सदस्य बनाने का संकल्प लें

आर्य जनता के अपूर्व सहयोग और उत्साह से जन-ज्ञान के सदस्यों की संख्या जिस तेज़ी से वढ़ी है उसके लिए अत्यन्त आभारी हूं। हमारी इच्छा है कि दीपावली से पहले जन-ज्ञान के सदस्यों की संख्या ५००० हो जाए। अभी ३५०० सदस्य हैं। १५०० सदस्य और बनें तो लक्ष्य पूरा हो।

हमारी प्रार्थना पर कुछ सदस्यों ने नए सदस्य बनाकर भेजे हैं, हम उनके आभारी हैं। किन्तु इस प्रयास में तेज़ी लाने की आवश्यकता है।

१ नवंबर से वार्षिक शुल्क १० रु० होगा

सदस्यों द्वारा 'जन-ज्ञान' का स्तर और भी अधिक उन्नत बनाने की आवश्यकता पर निरन्तर बल दिए जाने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि इसके पृष्ठ वढ़ाए जाएं। अतः पृष्ठ संख्या वढ़ाने के साथ-साथ वार्षिक शुल्क में वृद्धि भी करनी आवश्यक है।

१० रु० में कम से कम ४ विशेषांक देने का निश्चय

वर्ष में ८ साधारण अंक और ४ **विशेषांक** श्रावणी, दीपावली, शिवरात्रि, आर्य समाज स्थापना दिवस पर दिए जाएंगे। इस तरह १० रु० में ४ अनमोल ग्रंथ भी सदस्यों को मिलेंगे।

किन्तु जो सदस्य १ नवंबर तक धन भेज देंगे या नए सदस्य बनेंगे वे ८ रु० में ही वर्ष भर के सदस्य स्वीकार किए जाएंगे।

नये सदस्यों को विशेष भेंट

जो भी सज्जन ८ रु० भेजकर या वी० पी० पी० द्वारा ३१ अक्टूबर तक जन-ज्ञान के नए सदस्य बनेंगे उन्हें निम्न पुस्तकें भेजी जाएंगी—

१. वेद ज्योति	मूल्य ३ रु०	(अगस्त अंक)।
२. मां गायत्री	मूल्य ७५ पैसे	(जुलाई अंक) के स्थान पर
३. क्रांतिकारी दयानन्द	मूल्य ७५ पैसे	(जून अंक) के स्थान पर

इस प्रकार **नए बनने वाले सदस्यों को ४ रु० ५० पैसे की पुस्तकें तुरन्त मिलेंगी।** अक्टूबर अंक **वैदिक गीता अंक** होगा और नवंबर अंक **विशेषांक** ही होगा। यह दोनों विशेषांक तो मिलेंगे ही।

साथ ही **मई १९७० तक** निकलने वाले सभी साधारण व विशेषांक भी उन्हें **८ रु० में ही** मिलते रहेंगे। **आर्य बन्धुगण !**

वैदिक भावनाओं के प्रचार के लिए आप अपनी पूरी शक्ति से 'जन-ज्ञान' को आगे बढ़ाइए। अधिक से अधिक सदस्य बनाकर इस अवसर पर दी गई सुविधाओं से लाभ उठाएं। यह सुविधाएं केवल ३० अक्टूबर तक सदस्य बनने वालों के लिए ही हैं।

मुझे विश्वास है कि आर्य जन मेरी प्रार्थना पर ध्यान देंगे और ५००० सदस्य बनाने का संकल्प शीघ्रतिशीघ्र पूरा होगा,

विनीता
राकेश रानी
संपादक

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार
के संरक्षण-निर्देशन में
प्रकाशित

○

धरती के प्रत्येक मानव के हृदय मन्दिर पर "वेद ज्ञान" की पावन पताका फहराने के लिए कृत संकल्प

आर्य जनता का
अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन
"जन-ज्ञान"
(मासिक)
१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
करोलबाग नई दिल्ली-५

○

सम्पादक
—राकेश रानी—

○

वार्षिक मूल्य	१०)
एक प्रति	१)
विदेश में	१ पौंड

○

विज्ञापन दर

प्रति पृष्ठ	१००)
आवरण का द्वितीय व चतुर्थ पृष्ठ	२००)
आवरण का तृतीय पृष्ठ	१५०)

वेद का आदेश

संगच्छध्वं संवदध्वं
सं वो मनासि जानताम्
देवा भागं यथापूर्वे
संजानाना उपासते ॥

इस वेद मंत्र का पाठ सभी करते हैं, स्मरण भी बहुतों को होगा। पर क्या कभी इस का अर्थ भी सोचा है।

वेद कहता है।
मिल कर चलो,
मिल कर बोलो,
तुम्हारे मन एक हों,
तुम्हारे उद्देश्य एक समान हों और,
पूर्वजों के मार्ग पर चलते रहो।

मिल कर चलो। चलना तो नाम है 'गति' का भावनाएं मन की हों या क्रियाएं शरीर की, सब में ऐक्य हो। हमारा सब का लक्ष्य एक हो। परस्पर द्वेष रखने से ऐक्य होगा? पार्टी बाजी फूट और विज्ञप्तियां परस्पर विरोध में निकालने से ऐक्य होगा?

एकता का मार्ग प्यार के देवता के द्वार से होकर जाता है। प्यार नहीं तो एकता नहीं। फिर एक साथ चलें कैसे? तभी तो प्रभु ने आदेश दिया

"तुम्हारे मन एक हों"

किन्तु मन की एकता के लिए आवश्यक है कि उद्देश्य भी समान हों। समान उद्देश्य भी पवित्र होना चाहिए। अपवित्र उद्देश्यों के प्रति ऐक्य स्थायी नहीं हो सकता, इसलिए यह ऐक्य और प्यार संसार को स्वर्ग बनाने के लिए हो। शांति और स्नेह वितरण हम करते रहें, साथ-साथ चलते रहें।

जैसे हमारे पूर्वजों ने मनुष्य को मनुष्य बनाने का मार्ग दर्शन किया था वही मार्ग हम अपनाएं।

'वेद' का आदेश 'विवाद' जलाने का उपदेश दे रहा है। 'वेद' के गीत गाने वालो! आओ! 'विवाद' फूट और द्वेष भावों की आहुति देकर प्यार एकता की राह पर चलें। अन्यथा 'वेद' का प्रचार कौन करेगा···जब हम ही वेद की नहीं मानते तो और कौन मानेगा?

—भारतेन्द्र नाथ

विषय-सूचि

सितंबर १९६९

१.	संपादकीय		६
२.	हमें यह कहना है		६
३.	केनोपनिषद व्याख्या	—श्री अरविन्द टीका	२०
४.	अमर गीत (कविता)	—स्व: आरसी प्रसादसिंह	२२
५.	वेद ही क्यों ?	—आचार्य उदयवीर शास्त्री	२५
६.	संसार सागर की शाश्वत बूंद	—पं० सत्यपाल शर्मा वेद शिरोमणि	३३
७.	काश्मीर कैसे मुसलमान बना ?	—वैद्य मूलचन्द आर्य	३७
८.	प्रेरक उपदेश : महर्षि के	—आचार्य भद्रसेन	३९
९.	क्या आदि मानव मूर्ख था	—राजेन्द्रसिंह	४२
१०.	ब्रह्म देश में आर्य समाज		४९
११.	जब गांधी जी ने आर्य समाज का पक्ष लिया		५१
१२.	कर्मयोगी श्रीकृष्ण	—प्रेमचन्द शास्त्री	५२
१३.	क्या आर्य बाहर से आए थे	—बोधेन्द्र देव शास्त्री	५६
१४.	सत्य की महिमा	—स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती	६०
१५.	नैतिक शिक्षा पद्धति	--ओम्प्रकाश त्यागी संसद् सदस्य	६५
१६.	प्रभु प्राप्ति का मार्ग	—योगीराज जगन्नाथ पथिक	७१
१७.	वैदिक भक्तिवाद की रूपरेखा	—जगत्कुमार शास्त्री	७५
१८.	शिशु संसार		८९
१९.	पाठकों के पत्र		९७
२०.	नेता जी की स्मृति		१०५
२१.	दान सूचि		११०

प्रचारार्थ अधिक से अधिक मंगाएं

वे द - ज्यो ति

चारों वेदों के चुने हुए १००-१०० ईश्वर
भक्ति के मंत्रों का अपूर्व संग्रह

शब्दार्थ भावार्थ सहित

पृष्ठ २८० । मूल्य ३) । २०) की १० । ४५) की २५ ।
७०) की ५० और १२५) सैंकड़ा

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

अर्जुन ! कृष्ण भक्त अर्जुन संतान ! और योगीराज कृष्ण के गीत गाने वालो ! कृष्ण का आदेश सुनो······

"आर्य वीर के लिए धर्म युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याण कारक नहीं अतः अर्जुन उठ युद्ध कर···आततायी शत्रु दल का संहार कर।

आसुरी शक्तियों को समाप्त करने में हे आर्य ! यदि तू मर गया तो स्वर्ग मिलेगा और जीत गया तो पृथ्वी पर ईश्वर का, शांति और न्याय का साम्राज्य स्थापित होगा।

हे कृष्ण भक्त आर्य ! कायरता का मोह त्याग और युद्ध कर, निश्चय ही विजय तेरी होगी क्योंकि सत्य तेरे साथ है।

सम्पादकीय

दयानन्द का काम : युद्ध के स्वर

अज्ञान और अन्याय जब सीमाएं लांघता है, मनुष्य का जीवन और धर्म जब संकट में कांपने लगता है तब-तब वीर ईश्वर के पुत्र "आर्य" युद्ध का बिगुल बजाते हैं।

आंधी भोगवाद या कम्यूनिज्म की हो, या अराष्ट्रीय ईसाई तत्वों की, विघटन घर का हो या बाहर का, विनाश का तांडव नृत्य, अपने करें या पराए, इन सब का उपचार 'युद्ध' के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

युद्ध का अर्थ है संहार उन तत्त्वों का, जो मनुष्य को पशु बनाते हैं। वस्तुतः युद्ध द्वारा ही धरती की रक्षा का सुन्दर संगीत साकार नृत्य किया करता है। आसुरी भावों की बाढ़ जब भी आए तब यदि 'आर्य' कायर बन पथ भ्रष्ट हो जाएं तो फिर सर्वनाश निश्चित हो जाता है।

आधुनिक युग के महान् दिव्य द्रष्टा देव पुरुष महर्षि दयानन्द ने इस तथ्य को समझ, एकाकी और साधन विहीन होते हुए भी सारी अपनी संपूर्ण शक्ति, मेधा और बल साधना से जीवन के विकास की अवरुद्ध गति प्रशस्त करने हेतु अपनी "पाखंड-खंडनी पताका" लहरा अज्ञान को चुनौती दी थी।

गुरुदेव दयानन्द का आदर्श और आदेश प्रत्येक 'आर्य' के लिए आर्य दर्शन है। उन की लहरायी पताका, उन की साधना दिव्य दृष्टि आज भी हमारे समक्ष जीवित है, हम देख रहे हैं स्वप्नकि धरती से मत वादों का नामोंनिशां मिटा दिया जाए। जहरीली आंधियों के ज्वालामुखियों की हस्ती नष्ट हो जाए। प्रदेश, भाषा और मज़हब के भेद की दीवारें गिरा दी जाएं और मनुष्य-मनुष्य बन कर इस धरती को स्वर्ग बनाने का संकल्प ले।

महर्षि का यह महान् स्वप्न हमारे सामने खड़ा है। महर्षि के अनुयायियों को समय के प्रभाव से कुछ व्यामोह हुआ तो आसुरी सेना ने युद्ध के नगाड़े बजाए और भारत को, राम कृष्ण, ऋषि मुनियों की पावन संस्कृति, धर्म व मान्यताओं को मिटाने के लिए कूच कर दिया।

देखो···अरे देखो आर्य वीरो···वे असुर दल नाना वेश बनाए अपनी सेना सजा युद्ध के नगाड़े बजाते बढ़ते चले आ रहे हैं, उन्होंने सोचा है धरती पर रावण का राज्य स्थापित कर राम का अस्तित्व मिटाएंगे। उनकी ललकार और चुनौती के स्वर ज़ोरों से कानों में टकरा रहे हैं।

इस चुनौती को सुनकर भी जिन का रक्त नहीं खौलता, जिन का स्वाभिमान यौवन और धर्म-प्रेम मर चुका है वे कायर चूड़ियां पहन घरों में बैठ जाएं···

किन्तु जो दयानन्द के वीर सैनिक हैं, सच्चे अनुयायी हैं उन्हें आमन्त्रण है वीर वेश सजा विजय वरण हेतु संग्राम में जूझने का···

युद्ध के नगाड़े तो बज रहे हैं, शत्रु

सेनाएं चारों ओर से आ रही हैं। विजय के डंके बजाती बढ़ रही हैं। यह सोचने की नहीं···

जीवन के लिए कुछ करने की ऐति-हासिक घड़ी है। यह वह अवसर है जिस के लिए माताएं वीर पुत्र उत्पन्न करती हैं।

दयानन्द के वीर सैनिको! उठो! शत्रु दल की चुनौती स्वीकार कर आगे बढ़ो और अपने संपूर्ण संभव साधनों के साथ एक हाथ में ज्ञान 'वेद' का प्रकाश और एक हाथ में "पाखंड खंडनी पताका" लेकर युद्ध में जुट जाओ।

महर्षि दयानन्द के अनुयायी जहां भी हों, वे अच्छी तरह यह समझ लें कि आज उन पर संपूर्ण मानवता की रक्षा का दायित्व आ गया है। पूर्वजों की थाती का भविष्य अब उन्हीं पर निर्भर है। संसार में असंभव कुछ भी नहीं वस्तुतः 'असंभव एक ऐसा शब्द है जो केवल कायरों के शब्द कोष की शोभा है। वाल्ट स्काट के शब्दों में to the timid and hesitating everything is impossible because it seems so

अतः धरती को आर्य बनाना है तो आसुरी भावों से युद्ध करना होगा। उन्हें परास्त किए बिना हम जीवित नहीं रह सकते। जीवन के लिए मरने की तैयारी करना ही भविष्य की आशाओं का केन्द्र-बिन्दु है।

हम कार्यालय में हों या दूकानों में, घर में हों या बाहर, राजनीति में हों या राज्य सेवा में, हमें केवल एक काम करना है वैदिक विचारधारा का प्रसार, अवैदिक विचारों का खंडन। राज्य-अर्थ-समाज और धर्म की समस्त वर्तमान दूषित व्यवस्थाओं को समाप्त कर सत्य-न्याय समानता और शांति की मार्ग दर्शक वैदिक व्यवस्थाओं को स्थापित करने का दायित्व दयानन्द के वीर सैनिकों ने संभालना है।

पार्टीबाज़ों को लड़ने दो पदों के भूखों को झगड़ने दो, गद्दियों से चिपटने वालों को कुर्सियों पर बैठा रहने दो, इन उलझनों में पड़ने का समय नहीं··· ये सब तो समय के प्रवाह में बहने वाले उन्हीं के साथी तत्व हैं···

इसलिए दयानन्द के सच्चे अनुयायी दो हों या चार, अकेले हों, साधन हीन हों कोई चिन्ता नहीं, हमारा गुरु भी तो अकेला था, सत्य हमारे साथ है तो विजय सत्य की ही होगी।

रणभेरी के गूंजते स्वर सुन बाहुदंड फड़कें, हृदय में जोश, मस्तिष्क में होश का समुद्र ज्वार जागे और हम विजय का संकल्प ले समय की चुनौती स्वीकार करें···

संभव असंभव से पूछता है—
तुम्हारा निवास स्थान कहां है?
उत्तर मिला निर्बल के स्वप्न में।

निर्बल के स्वप्न स्वप्न और सबल के स्वप्न इतिहास बनाते हैं। वीर बन्धुओ, कर्तव्य पहचानो, समय तेजी से दौड़ रहा है··· सोचो, समझो और दयानन्द की सेना में सैनिक बनकर दयानन्द का काम पूरा करो।

आभारी हूं···जन-मानस के प्रति

नवम्बर १९६८ में अत्यन्त संकोच के साथ 'जनज्ञान' का संपादन मैंने संभाला था। विश्वास नहीं था कि गुरुतर भार का वहन कर सकूंगी। आर्य समाज के नेताओं को व्यामोह में पड़े देख भी बहुत उलझनें मस्तिष्क में थीं किन्तु गत १०

मास में आर्य जनता के हृदय का जो पवित्र रूप सम्मुख आया है उसने शक्ति भी दी है और उत्साह भी···

चारों ओर से प्रेरक सहयोग मिल रहा है और मिलेगा भी···वस्तुतः जन-जन की भावना ही हमारी पूंजी है। इन भावों में भाव की कल्पना कर दिन रात के १८ घंटे अब तो 'जन-ज्ञान' को अर्पित हैं।

कार्य बढ़ रहा है और दायित्व भी, प्रभु का आशीर्वाद बरसता रहे, आर्य जनता की भावनाओं और स्वप्नों को साकार कर सकूं···महर्षि दयानन्द का संदेश फैला···तूफानों को वरदानों में बदलने की साधना फैले इसी इच्छा से जीवन जय के गीत गुंजाने में लगा दिया है···महर्षि के सच्चे अनुयायी भाई और बहनें और सब ओर से ध्यान हटा आर्य विचारधारा के प्रसार में लगें तो फिर सफलता कैसे दूर रह सकती है।

सहयोगी जनों का धन्यवाद···और सभी को निमंत्रण एक बहन का 'ओ३म्' पताका उठा कर विश्व विजय की यात्रा पूरी करने के लिए। अस्वीकार कौन करेगा ?

—रा·केशरानी

जन-ज्ञान का अगला अंक : अक्टूबर अंक

वैदिक–गीता अंक होगा

आधुनिक युग के महान् विद्वान् तपस्वी संन्यासी

स्वामी आत्मानन्द सरस्वती का अनुपम प्रसाद

प्रक्षिप्त अंशों को त्याग योगेश्वर कृष्ण के सच्चे उपदेश का भाष्य

मूल्य २) । किन्तु प्रचारार्थ १०) की दस प्रति । २०) की २५ ।
३८) की पचास और ६०) की १०० ।

योगीराज कृष्ण का तिरंगा हाफ़सेट चित्र हाथ में तलवार पकड़े देखकर आप हर्ष विभोर हो उठेंगे ।

आज ही अपना आदेश भेजिए

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह रोड नई दिल्ली-५

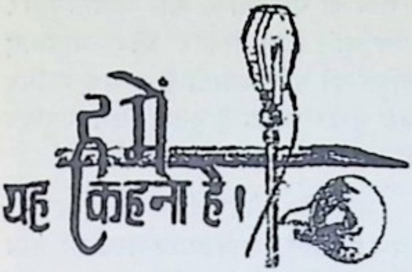

मृत्यु के द्वार पर जीने की तैयारी

मृत्यु बहुत डरावनी है, भयानक है, जब वह आती है तो बड़े-बड़े बली डोल जाते हैं। कोई भी मरना नहीं चाहता ! यह प्रत्यक्ष सत्य है।

तो सुनो ईश्वर पुत्रो ! मृत्यु द्वार पर आ गई है। उसकी थपकियां हमारे घर आंगन में सुनाई पड़ने लगी हैं। हम जो अपने को ईश्वर पुत्र कहते हैं उनकी समाप्ति के साधनों को लेकर मृत्यु द्वार पर आकर खड़ी हो गई है।

हमारे जीवन दर्शन की समाप्ति के लिए, हमारे धर्म-सन्देश को मिटाने, संस्कृति, इतिहास और परंपराओं को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने की पूरी तैयरियां ज़ोरों से हो चुकी हैं।

कान खोल कर सुनो, आँखें खोलकर देखो तो दिखाई देगा चारों ओर से असुरों का उमड़ता प्रवाह। आसुरी भावों की उफनती लहरें···वेश-नाम कुछ भी हो पर सब का एक दृढ़ निश्चय है हम ईश्वर पुत्र 'मनुष्य' को मनुष्य बन कर धरती पर नहीं रहने देंगे।

धरती पर रावण के बेटे रहेंगे राम के पुत्र नहीं, यहां नृत्य आनन्द का नहीं, पशुता का होगा और सारी धरती पर ईश्वर—आत्मा–सत्य–न्याय–नैतिकता— मानवता के नामों को मिटा दिया जाएगा। यहां उभरेगी "पशु-सभ्यता" नाना रूपों में। मनुष्य पशु बनकर इस धरती का उपभोग करेगा।

मृत्यु का यह रूप सर्वत्र छा गया है। सब मोह ग्रस्त होकर जीवित ही मरने की तैयारी कर बैठे हैं। किन्तु नहीं—

इन पंक्तियों द्वारा हम प्रत्येक ईश्वर पुत्र को पुकार कर कहते हैं······नींद खोलो, संभलो और मृत्यु के द्वार पर आ जाने पर भी जीने की तैयारी करो।

कुछ भी करना पड़े, कष्ट कितने भी क्यों न आएं पर लड़ो, इस मृत्यु से लड़ो और जीवन को प्राप्त करने के लिए एक बार फिर समस्त संभव साधनों के साथ जुट जाओ।

भोगवादी विचारधाराओं के रहते इस धरती पर "जीवन" नहीं रह सकता, मत-वादों के ज़हर के साथ "शांति" का संगीत नहीं सुना जा सकता। मनुष्य-मनुष्य के बीच खड़ी भेद भावों की दीवारें रहते हुए स्वर्ग साकार नहीं आ सकता।

इस तथ्य को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने समझा था और मानव जाति को मृत्यु से बचाने के लिए समाधि सुख छोड़, विष प्याले पी-पी कर भी सभी को जीवन का मार्ग बताया था।

महर्षि का सुझाया और 'वेद' द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही वस्तुतः मनुष्य को मनुष्य बनाने का साधन है। इस साधन को

जीवन में अपना कर ही हम मृत्यु के द्वार पर आ जाने पर जीने की तैयारी कर सकते हैं ।

हथियार उठाइए

युद्ध छिड़ा है, विजय प्राप्त करनी है तो हथियार उठाने होंगे । पर यह संग्राम तलवार-बन्दूक और बमों का नहीं विचारों का है । अब पशुदल से नहीं धरती पर राज्य बुद्धि बल से स्थापित होगा ।

चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य में विश्वास रखने वालों से हमारा आग्रह है कि वे हथियार उठाएं और अनार्य विचारों का संहार करें । हथियार हैं साहित्य । साहित्य के बल से कम्यूनिज्म फैला, ईसाइयत फैली और आज की सारी भोग-वादी विचार धाराएं फैल रही हैं ।

काश, दयानन्द के अनुयायियों ने साहित्य के महत्त्व को समझा होता तो आज स्थिति यह न होती । हमने भवन और विद्यालय तो बनाए पर हथियार नहीं बनाए । हमारे पास और सब कुछ है पर साहित्य नहीं है ।

दुनियां पर विजय पानी है तो अब साहित्य-अस्त्र संभालना होगा । दुर्बल पक्ष सबल बना जीवन और समाज के प्रत्येक क्षेत्र तक वैदिक विचारधारा पहुंचाने के साधन जुटाने होंगे ।

आर्यजन ! मास में एक दिन व्रत रख कर भी अस्त्र बांटिए···अपरिचितों के मन और मस्तिष्क पर विजय पाने के लिए आप को मार्ग बदलना ही होगा ।

अश्लील : श्लील

अश्लील शब्द का अर्थ है ग्राम्य—गन्दा—फूहड़, अक्खड़ । अर्थों के प्रकाश में शब्द के अर्थ व्यक्ति की भावनानुसार बदल जाते हैं । संस्कार और भावनाएं व्यक्ति की रुचि बनाती हैं । एक व्यक्ति जिसे सुन्दर कहता है दूसरा उसे असुन्दर भी कह सकता है ।

नारी देह भोगवादी के लिए परमा-कर्षण है किन्तु जिसने आत्म-तत्त्व को जान लिया वह देह से मोह नहीं कर सकता । उसकी दृष्टि में सौन्दर्य प्रदर्शन में नहीं अनुभूति में है ।

गहरे पानी पैठ चिन्तन किया जाए तो जीवन का वर्तमान दर्शन समूचा 'अश्लील दर्शन' है । प्रदर्शनात्मक अभि-रुचियां और दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के यह समस्त कार्य कलाप कितने फूहड़ हैं इसकी कल्पना या निर्णय तो तभी होता है जब मृत्यु आकर द्वार पर थपकी देती है ।

आधुनिक समाज का सारा भवन खोखली नींव, असत्य चिन्तन और अश्लील दर्शन का निर्माण है । इसने मनुष्य को पशु बनाकर उसकी रुचि और आवश्यकताओं, को बदल डाला है । चुंबन-आलिंगन-नग्न नृत्य और फैशनों का यह प्रदर्शन भारत में हो या विदेश में, इनके विरोध का सबल उपाय है भौतिकवादी दर्शन को समाप्त कर आत्म-तत्व के सत्य ज्ञान को दीप्त करना । मनुष्यों के मस्तिष्कों में छाया गहन अंधकार उसे मृत्यु की गोदी में थपकियों से सुलाकर शरीर को ही जीवित सत्यमान जो कुछ करा रहा है उसकी समाप्ति तो पूर्ण 'पशु' बन कर ही होगी ।

मनुष्य 'पशु' बनेगा या 'देव' इसका निर्णय तो समय ही कर सकेगा ।

कोई भ्रम में न रहे

अभी हाल ही में एक पादरी आए, और आर्यसमाज की चर्चा में कहने लगे विवाद की बातें। यही नहीं यत्र तत्र अनेक बार अनेक व्यक्ति यह आरोप लगाते हैं किन्तु जो ऐसा सोचते हैं वे भ्रम में हैं। वस्तुतः आर्य समाज में कोई विवाद है ही नहीं।

आर्य समाज महर्षि दयानन्द द्वारा संस्थापित वह संगठन है जिसका उद्देश्य है वदिक विचारधारा का प्रसार। इस उद्देश्य के प्रति इसके सदस्यों में कहीं विरोध नहीं, वैदिक सिद्धान्तों में कहीं अनास्था नहीं। ऋषि दयानन्द के किसी भी अनुयायी में किसी भी प्रकार का विचार भेद नहीं हो सकता।

जो विवाद व्यक्तिगत रूप में कहीं करते भी हैं तो वे आर्य समाजी नहीं। आर्य समाज का सदस्य या अनुयायी कभी आपस में लड़ ही नहीं सकता। अतः आर्य समाज का नाम लेकर यदि कोई विवाद करता भी है तो यही समझना चाहिए कि इस पर आर्य समाज का लेबिल नकली है।

नकली के लिए असली को दोष देना बुद्धिमानी नहीं। असल और नकल की पहचान करना हम सीखें और कसौटी यह बनाएं कि जो अज्ञान से, अन्याय और मतवादों के ज़हरीले प्रवाह को समाप्त करने में लगे वह असली आर्य समाज का सैनिक है और जो आपस में पदों और स्वार्थों के लिए लड़ रहा हो उसे देख समझ लो कि दयानन्द की सेना में शत्रु-दल वेश बदल कर घुस आया है। सावधान हम इसलिए हों कि नकल असल को बदनाम न कर दे। विजय हार में न बदल जाए। संसार का सब से पवित्र संगठन कहीं नकली के चक्कर में असली को ही न भूल जाए।

वेद की ऋचाओं का मधुमय संगीत, पावन गायत्री का प्रेरक गीत, सत्य का शाश्वत स्वर, गुंजा आनन्द की ज्योतिर्मय गंगा में स्नान करने वाला ईश्वर पुत्र 'आर्य' विवाद नहीं संघर्ष करता है। वह अपनों की, आर्यों की रक्षा कर असुर दल का संहार करता है।

और आज भी दयानन्द के लाखों सैनिक उत्साह त्याग और बलिदान की भावना से एक हाथ में 'पाखंड-खंडिनी पताका' और एक हाथ में 'वेद-ज्योति' संभाले विजय वरण हेतु बढ़ते जा रहे हैं। सैनिकों के पुनीत यज्ञ को विध्वंस कोई कर नहीं सकता। जो करेगा वह असुर रावण की भांति नष्ट होगा। आर्य का लेबिल लगा कर नकली चेहरा लगा रावण एक बार छल से सीता को हर सकता है पर विजयी तो 'राम' ही होगा।

आर्य अजेय हैं, दयानन्द के वीर सैनिक आर्य समाज संगठन द्वारा धरती पर 'ओ३म्' की पताका लहराएंगे······ कोई भ्रम में न रहे।

समझौता नहीं : संघर्ष

समझौता कायरों का शब्द है। हम यदि भूल पर हैं तो हमें झुक कर क्षमा मांगनी चाहिए। अन्य के लिए भी यही मार्ग है। वस्तुतः समझौते का दर्शन स्वार्थ के चिन्तन का परिणाम है

हम जीवन के लिए संघर्ष आवश्यक समझते हैं। क्योंकि वस्तुतः संघर्ष ही जीवन है। संघर्षहीन जीवन और मृत्यु में केवल इतना अन्तर है कि हम सांस लेते

हैं। संघर्ष हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। जो संघर्ष से डरते हैं आनन्द और शांति उनसे डरने लगती है।

आज के राजनीतिज्ञ और विचारक सभी विरोधी विचारधाराओं में समन्वय की बातें करते हैं किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। अच्छायी और बुराई कभी एक साथ नहीं रह सकतीं।

मनुष्य को शांति और आनन्द चाहिए तो उसे संघर्ष करना होगा, आसुरी भावों का अस्तित्व मिटाना होगा। जहरीली शिक्षा देने वाले मस्तिष्कों और पुस्तकों को समाप्त कर प्रेम-मंत्र का जप करने वाले मार्ग का दर्शन फैलाना होगा।

एकता का मार्ग संघर्ष के द्वार से होकर ही निकलता है। आग और पानी का मेल संभव नहीं। पाप और पुण्य में संघर्ष की आवश्यकता है समझौते की नहीं।

राष्ट्रपति का निर्वाचन

पिछले दिनों भारत के चौथे राष्ट्रपति के निर्वाचन को लेकर राष्ट्र नेताओं का जो रूप उभरा है वह चिन्ता में डालने वाला है। स्थिति का निरीक्षण देश में बढ़ते हुए कम्यूनिस्ट प्रभाव का संकेत दे रहा है। उच्च स्तरों पर अनुशासन हीनता और उच्छृंखलता का नर्तन 'आत्मा की आवाज' के नाम पर खुलकर हुआ और सब ने यह जान लिया कि अपनी गद्दियों से प्यार के लिए राष्ट्रहित की बलि चढ़ाने में संकोच करने वाले बहुत कम हैं।

नेताओं का राष्ट्रीयकरण

राष्ट्रीयकरण का नारा सामान्य जन के लिए, विशेषतः उनके लिए, जिनको कोई लाभ-हानि इससे नहीं बहुत आकर्षक है। किन्तु परिणाम बता रहे हैं कि हमारे देश में राष्ट्रीयकरण का अर्थ है प्रगति में अवरोध उत्पन्न करना।

व्यक्तिगत पूंजी पर यदि उचित नियंत्रण हो तो वह समाज का हित करती है किन्तु जिन विभागों को भी अभी तक सरकार ने संभाला है उनकी दुर्गति का—घाटे का—चित्र किसी को भी बताने की आवश्यकता नहीं। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से भी निर्धन जनता का कोई हित होगा, हमें तो इसकी संभावना दिखाई नहीं पड़ती हां, एयर कंडीशन्ड महलों में रह कर, करोड़ों का बैंक बैलेंस रखने वाले और लाखों रुपया—बिजली-फ़र्नीचर-आदि पर, दावतों पर उड़ाने वाले हमारे महान् मंत्रीगण इससे जन-मानस को कुछ दिन और बहकाने में सफल अवश्य हो जाएंगे।

गंभीरता से सोचा जाए तो आज राष्ट्रहित के लिए सब से पहले नेताओं के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता है। स्वार्थी नेता धन-कुर्सी और सत्ता के लोभ में मदान्ध होकर जनहित भूल अपना पेट भरने में लगे हैं। सभी क्षेत्रों की स्थिति यही है। जो कल तक भाषण देकर अपना गुज़ारा करते थे वे आज-इन २० वर्षोंमें लखपति हैं।

जनता को बहकाकर सेवा के मार्ग पर रुपया इकट्ठे करने वाले इन नेताओं का मार्ग देश भक्ति का नहीं द्रोह का है। समय की मांग है कि जनता नेताओं के राष्ट्रीयकरण की मांग को सबल स्वर में उठाए और जनता के नेता जनता की तरह रहें उसी की तरह सोचें और चिन्तन

करें। तभी कल्याण होगा, अन्यथा सर्वनाश को कौन रोक सकेगा ?

आर्य समाजों के अधिकारियों से

इन पंक्तियों द्वारा आर्यसमाजों के अधिकारियों से हमारा आग्रह है कि वे वर्तमान को ध्यान से देखें और अगर महर्षि दयानन्द के प्रति तनिक भी श्रद्धा और प्रेम है तो अपने काम करने का ढंग बदलें। इस संबंध में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं—

१. सभाओं में या बड़े नेता नामधारी व्यक्ति क्या कर रहे हैं। इसकी ओर से ध्यान हटाएं। कोई गलत मार्ग पर चल रहा है तो हम पर उसका प्रभाव क्यों पड़े ?

२. हम दूसरों की आलोचना करनी बन्द करें और स्वयं अपनी ओर देखें कि हम में तो कोई त्रुटि नहीं है। अपनी त्रुटियां दूर कर ही हम स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं।

३. भवन-विद्यालय तो बहुत बना लिए अब जीवित 'वेद मंदिर' बनाने का व्रत लें। अधिक से अधिक व्यक्तियों तक वेद का संदेश पहुंचाना और उन्हें वैदिक विचारधारा में दीक्षित करना ही हमारा एक मात्र कार्यक्रम होना चाहिए।

४. आर्य समाज को शक्तिशाली बनाने हेतु साप्ताहिक-सत्संग को सफल बनाने में हम अपनी बुद्धि और शक्ति का प्रयोग करें। हम यह तथ्य समझ लें कि वैदिक विचारधारा के साम्राज्य की आधार शिला हमारे साप्ताहिक सत्संग ही हैं।

५. भारत ग्रामों में रहता है और ग्रामों की ओर अब तक हमने ध्यान नहीं दिया। हमें अपने देश में भी अपनी विचारधारा को जीवित रखना है तो ग्रामों की उपेक्षा नीति छोड़ इधर ध्यान देना होगा और अपने प्रचार कार्यक्रमों में ग्रामों को विशेष महत्व देकर उसके लिए निश्चित योजना बनाकर कार्य में लगना होगा।

६. साहित्य की उपेक्षा कर हम जीवित नहीं रह सकते। हमने अभी तक भी साहित्य के महत्व को नहीं समझा। हमारी दृष्टि में यह घोर अपराध है। भवन के लिए २-३ लाख रुपया व्यय करने वाले अनेक आर्य समाज साहित्य प्रचार में १ पैसा भी लगाना पाप समझ रहे हैं। हमारी दृष्टि में भवनों का मोह मिट्टी की पूजा भावना के समान है। इसे त्याग साहित्य के विभिन्न भाषाओं में प्रसार हेतु निश्चित राशि निश्चित करनी चाहिए हम साहित्य को विजय का अमोघ अस्त्र समझें।

७. परस्पर प्रीति, संगठन, अनुशासन और पर-दोष खोज-प्रवृत्ति का त्याग ही हमें नया जीवन-दे सकेगा। फूट की आग में हाथ सेंकने वाले आर्य नहीं 'असुर' हैं। ऐसे असुर दल से यथा योग्य व्यवहार करना ही उचित है।

८. अध्यात्म की ओर से अरुचि ने हमें श्रद्धा विहीन, तार्किक और वाद प्रिय बना दिया है। वर्षों तक सन्ध्या-उपासना के बाद भी हमें न प्रभु पर विश्वास है न अपने पर। हम जानते नहीं कि वह पिता परमात्मा कैसा है ? उसके प्रकाश को हमने देखा नहीं···तो औरों को दिखाएं कैसे ?

उन्नति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है अध्यात्म की उपेक्षा। प्रभु पुत्रो, पहले अपने को जानो, प्रभु पर विश्वास लाओ तभी विश्व विजय के स्वप्न पूरे होंगे।

९. संगठन में निर्माण है और विघटन में महानाश, विघटन के बीज वही बोते हैं जो आर्य नहीं। आर्य संगठन चाहता है। इसलिए जो भी आर्य हैं वे प्रेम का मार्ग अपनाएं। घृणा को, द्वेष को मिटाएं। आज तक जो कुछ भी हुआ, उसे भूल जाएं—जला दें और आज से सभी परस्पर प्यार से एक पिता के पुत्र समान भाई की तरह समाज का कार्य मिलकर करें।

हमें आर्य समाज से प्यार है तो आइए प्रतिज्ञा करें कि कोई लड़े या गाली दे, हम आपस में नहीं लड़ेंगे। किसी से द्वेष-ईर्ष्या नहीं करेंगे। प्यार हमारा मंत्र और सौहार्द हमारा मार्ग दर्शक होगा। हम एक हैं एक रहेंगे। दयानन्द की विजय के लिए, आओ प्यार और एकता का पाठ पढ़ें।

१०. हम झूठी नारेबाज़ी से बचें, आंखें खोल कर काम करें। असत्य बोल कर लुभावने जाल बिछा कभी 'वेद' के नाम पर और कभी आर्य साम्राज्य की स्थापना के नामपर बहकाने वालों ने हमें बहुत गिराया है। हम किसी को उसकी योजनाओं से नहीं कामों से आंके। और अच्छी तरह कसौटी पर परख कर जांच पड़ताल कर सहयोग दें। आर्य समाज की बहुत बड़ी शक्ति नारेबाज़ी करने वालों द्वारा नष्ट हो रही है। कोई वेद मंदिर बनवाता है तो कोई भव्य गुरुकुल के लिए करोड़ों की अपीलें करता है। कोई राज्य स्थापना के नाम पर बहकाता है तो कोई संसद् में जाने के लिए सहयोग मांगता है। इस दिशा में बहुत सावधानी के साथ विचार कर केवल आर्यसमाज की हित भावना से हमें अपने धन का प्रयोग करना चाहिए।

यह १० सुझाव लिखे हैं, वर्षों के अनुभव के बाद। इस संबंध में अन्य सुझावों का भी स्वागत करेंगे। प्रभु कृपा करें कि हम आर्य समाज को महर्षि दयानन्द का आर्य समाज बनाने के लिए जो कुछ भी कर सकते हों करने में लगें और सफल हों।

प्रेम : स्वार्थ

विजय के लिए हथियार की आवश्यकता होती है। हम और आप किसी को हराने के लिए प्रायः द्वेष और घृणा के अस्त्र का प्रयोग करते हैं। इन्हीं के वशीभूत मारक हथियारों द्वारा हत्या और रक्तपात सर्वत्र होता है।

किन्तु घृणा से किसी को कब विजय मिली है। घृणा से तो घृणा का ही जन्म होता है। यह मनुष्य को मनुष्य नहीं खूंखार जानवर बना देती है। शत्रुओं के प्रति हमारी घृणा उन्हें हानि पहुंचाने के स्थान पर हमें अधिक चोट पहुंचाती है। कवि बायरन के शब्दों में Hatred is the madness of the heart घृणा हृदय का पागलपन है। इसलिए शत्रु और आतताियों से भी घृणा नहीं प्यार करो।

आसुरी शक्तियां हों या विरोधी शत्रु दल हम उन के प्रति प्यार का अस्त्र प्रयोग करें। उन्हें दंड भी दें तो भी लक्ष्य हो उन का सुधार। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अहिंसा का अर्थ कियाहै वैर त्याग। यदि किसी के प्रति हमें द्वेष और घृणा नहीं तो सुधार और सन्मार्ग पर लाने के लिए किसी को कठोरतम दंड देना भी अहिंसा ही है।

वस्तुतः मानव मात्र की एकता का अमोघ मंत्र 'प्रेम' ही है। 'प्रेम' का स्वभाव हैअनेक को एक करना और 'घृणा एक को

भी विभाजित कर देती है। वास्तव में प्रेम मनुष्य मात्र के प्रति उस का हृदय पवित्रता का साक्षत मंदिर है। जहां प्रेम है वहां राग-द्वेष-वासना,कलुश कामना का चिन्तन हो ही नहीं सकता।

आर. जी. इंगरसोल के शब्दों में—Happiness is the only good, reason the only torch, justice the only worship, humanity the only religion and love the only priest.

प्रेम ही सद्गुण, तर्क ही ज्योति, न्याय ही पूज्य और मानवता ही धर्म और प्रेम इन सब का पुजारी है।

प्रेम मनुष्य के हृदय का अमृत है। वह आत्मा का प्रकाश, मस्तिष्क का उन्नायक और जीवन का 'सोम-रस' है। मनुष्य आज प्रेम को भूल स्वार्थ का पुजारी बन गया।

ज्ञान का लक्ष्य प्रेम के गीतों में गूंजता है। 'प्रेम नाम है उस ऊंची गरिमा का जहां कभी अंधकार नहीं आता। प्रेम वह पवित्र गंगा है जहां पाप-अज्ञान स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

आओ! घृणा, द्वेष और स्वार्थ की आहुति दे प्रेम करें अपने से, आस पास बसने वालों से, मनुष्य मात्र से और फिर प्रेम की साधना से उस अपने प्रियतम को पालें जिसे प्रभु, परमात्मा के नाम से पुकारते हैं।

हमारा आर्य समाज

हमारा आर्य समाज वर्तमान संगठन और मन्दिरों-भवनों वाला आर्य समाज नहीं है। हमने कभी भी अपने नेत्रों से इस आर्य समाज को आर्य समाज नहीं समझा यह सब साधन थे आर्य समाज को आगे बढ़ाने के, अब ये ही साध्य बन गए। रेलगाड़ी को ही लक्ष्य समझ कब किसने लक्ष्य पाया है?

हम उस आर्य समाज के उपासक हैं जिसे महर्षि दयानन्द ने स्वयं अपने मस्तिष्क में देखा था। जिसके स्वर्णिम रेखा चित्रों की झलक दयानन्द के ग्रंथों में दीखती है वह आर्य समाज ज्योति पुंज है जो अंधकार रहने नहीं देगा। वह अग्नि है जो अज्ञान को जला देगी।

महर्षि दयानन्द का आर्य समाज मूर्ति-पूजा, गुरुडम-प्रान्तीयता, जातीयता, भोग-वाद और कुरान, बाइबल व सभी मनुष्य कृत मद-वादों को समाप्त करने के लिए कृत संकल्प हैं। वह तूफान है सर्वनाशकारी तत्त्वों के लिए। शान्ति है मनुष्य के लिए, मारक है असुरों का, नाशक है रावण दल का।

हमारा आर्य समाज, आर्य समाज मंदिर नहीं, जन मानस के हृदयों में वेद मंदिर बनाने का व्रती है। मिट्टी का पुजारी नहीं क्रान्ति का संदेशवाहक है। वस्तुतः वर्ण-आश्रम और समस्त वैदिक विचारधारा के अनुसार सुखी आनन्दमय विश्व की कल्पना को साकार रूप देने में संलग्न 'आर्य समाज' का दिव्य रूप ही हमारी शक्ति और प्रेरणा है।

आर्य समाज आज भी लाखों महर्षि के सच्चे अनुयायियों के हृदय में जीवित है। वह संसार की सब से प्रबल शक्ति है। यह शक्ति ज्ञान जीवन और सत्य की शक्ति है। यह त्याग-बलिदान और निर्माण की शक्ति है। यह शक्ति धरती का भाग्य बदलने का सामर्थ्य रखती है।

सोते, जागते, खाते, पीते, चलते, फिरते दिन-रात वर्षों से हम ने इसी आर्य समाज की साधना की है। हमारा अडिग विश्वास है कि आर्य समाज परम पिता

परमात्मा का संदेशवाहक और महान् युग पुरुष देव दयानन्द का उत्तराधिकारी है।

आर्य समाज में सामर्थ्य है धरती के सारे आसुरी बल से टकराने की, कम्यूनिज्म-ईसाइयत और मत-वादों के प्रलय प्रवाह को रोकने की। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब संयुक्त राष्ट्र संघ के भीतर बैठे संसार के सभी देशों के प्रतिनिधि अपने सारे देश-जाति-पांति और स्वार्थों के भेद भुला एक ईश्वर के पुत्र होने के नाते भाई-भाई की तरह इस धरती पर रहने, सुख-दुःख बांटने और समान समाज-राज्य, न्याय, व्यवस्था स्थापना का व्रत लेंगे।

महर्षि के दिव्य स्वप्नों को मूर्त रूप जिस दिन मिलेगा। उस दिन आर्यसमाज की जय का नारा सत्य साकार होगा। वह होगा यदि आप भी दयानन्द के आर्यसमाज के पुजारी बन कर व्रत लेंगे कि—

दयानन्द का काम पूरा करेंगे
उसी के लिए हम जिएंगे मरेंगे।

रोग का मूलः अध्यात्म उपेक्षा

वर्तमान समस्याओं पर जब भी विचार होता है सभी अनेक कारण प्रस्तुतः करते हैं पर कारणों की खोज और समस्याओं का समाधान करने पर भी उलझनें बढ़ती जा रही हैं।

निराशा, फूट, आलस्य, प्रमाद, स्वार्थ ने परस्पर का सौहार्द जला दिया है। कारण किसी को भी मिल नहीं रहा। हम ने इस संबंध में बहुत सोचा और बार-बार सोचने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सारी उलझनों का कारण है। अध्यात्म का अभाव……

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जो आत्म तत्त्व को नहीं जानता वह कोई भला काम नहीं कर सकता। और अपने को जानकर कोई बुरा काम नहीं हो सकता। अध्यात्मवादी पुण्य मार्ग पर और स्वार्थ शरीर वादी पाप-पथ पर चलने के लिए बाध्य है।

हमें वर्षों बीत गए संध्या करते, ईश्वर का नाम लेते किन्तु क्या एक क्षण के लिए भी हम ने यह जाना कि मैं हूं कौन? इस धरती पर क्यों आया हूं? यहां से हमें क्या लेकर जाना है? हम अपने सारे कार्य कलाप यह समझ कर करते हैं कि हम ने सदा रहना है। मृत्यु आएगी और हमें जाना भी पड़ेगा कहीं और, इसका हमें ज्ञान नहीं।

जीवन के सत्य 'आत्मा' की उपेक्षा और 'शरीर' की साधना ही हमारा लक्ष्य बन गई है। जब तक यह राह रहेगी हम कुछ भी न कर सकेंगे। धर्म मार्ग का प्रथम पाठ ही यहां से आरंभ होता है। जिन्होंने इसे नहीं पढ़ा उन से धर्म प्रसार की आशा करना उचित नहीं।

सब से पहले हमें मार्ग बदलना होगा। अपने को जानना होगा तभी हम आगे बढ़ सकेंगे।

साप्ताहिक 'जन-ज्ञान'

अनेक पाठकों के पत्र आए हैं, इस आग्रह और प्रश्न के साथ कि साप्ताहिक 'जन ज्ञान' कब निकलेगा?

प्रश्न का उत्तर देना कठिन है फिर भी यह तो स्पष्ट कर ही दें कि साप्ताहिक तब निकलेगा जब हमारी तपस्या पूरी होगी। एक स्वप्न संजोए हम काम कर रहे हैं कि आर्यसमाज का साहित्य पक्ष प्रबल हो। उसके उत्तम ग्रंथ विभिन्न भाषाओं में लाखों में छपें। मासिक, साप्ता-

हिक, दैनिक पत्र उस के अपने हों और सर्वत्र आर्य समाज की जय गूंजे।

यह सब तब होगा जब आर्य जन साहित्य और पत्रों का महत्त्व समझेंगे। भूखे रहकर भी साहित्य के साधन जुटाएंगे। भवन निर्माण के स्थान पर साहित्य निर्माण की ओर ध्यान देंगे।

हम आर्य समाज का धर्मयुग, हिन्दुस्तान जैसा साप्ताहिक बनाना चाहते हैं, यह चाह तब पूरी होगी जब हमारी कामना के प्रति आर्य जन दृढ़ विश्वास के साथ साथी बनेंगे। पिछले अंक में हम ने साप्ताहिक के लिए १० हज़ार रुपए की मांग की थी। उस मांग को हम भिक्षा पात्र लेकर निकलें तो ४ दिन में पूरा कर सकते हैं, पर अभी तो हमें अपनी परीक्षा देनी है।

हमारी पुकार सुनकर यदि आरंभ में १० हज़ार नहीं आ सकता तो हम साप्ताहिक निकालने में अपने को अभी असमर्थ पाते हैं, क्योंकि साप्ताहिक का तो एक मास का ही व्यय हज़ारों रुपया होता है। साधनों के अभाव में कार्य का जो बोझ हमारे कंधों पर आ पड़ा है उसे हम प्रभु के विश्वास और ऋषि भक्तों के आशीर्वाद से पूरा करने का यत्न कर रहे हैं।

मासिक जन-ज्ञान के सदस्य दीपावली तक ५००० हो जाएं यह इच्छा है। अभी १५०० सदस्य और चाहिएं। ५००० सदस्य बनने पर हम समझेंगे कि मासिक को और कैसे उन्नत किया जाए?

साप्ताहिक के लिए हमें धन की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी एक ऐसे सहयोगी की है जो हमारा दायां हाथ बन कर कार्य संभाल सके। जो ऋषि दयानन्द के लिए सर्वस्व की आहुति दे सके। ऐसे योग्य व्यक्ति का सहयोग मिलने पर तो हम बिना धन के भी एक मास में अच्छा साप्ताहिक निकाल सकते हैं।

आर्य जन अपना स्नेह और आशीर्वाद दीजिए······हम योजना और घोषणाओं में विश्वास नहीं रखते, कड़ी कसौटी में हमें परखते रहिए, अगर हम सचमुच ठीक रास्ते पर हैं तो आइए हमारे साथ विश्व विजय के लिए।

आर्य ब्राह्मण के रूप में दान देना और लेना अपना अधिकार और धर्म समझ कर भिक्षा की झोली भी फैलायी है और ज्ञानदान भी दिया जा रहा है। अभी देना अधिक है और प्राप्ति कम। चिन्ता नहीं, विश्वास दृढ़ यही है कि विजय सत्य की होती है, वह दिन शीघ्र आएगा जब आर्य समाज अपने साहित्य और पत्रों पर अभिमान कर सकेगा।

अंधकार बहुत है, निराशा भी प्रबल घन माला-सी छाई है पर हमने तो विजय के स्वर में सदा 'जय' के ही गीत गाए हैं। हम जयी होंगे 'आर्य विचारधारा का साम्राज्य धरती पर आएगा, हम भी उस में रज-कण सा योग दे सकें ताकि हमारे बाद की पीढ़ी प्रेरणा पा दिव्य दयानन्द के स्वप्न पूरे कर सके।

अराष्ट्रीय तत्वों को चुनौती

पिछले दिनों आर्य समाज के सर्वोच्च संघटन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री रामगोपाल जी ने अपने एक परिपत्र में आर्य जनता से आग्रह किया था कि स्थान-स्थान पर अराष्ट्रीय प्रचार निरोध समितियां स्थापित की जाएं।

यह निर्णय वस्तुतः समय की मांग के

अनुकूल है। करोड़ों अरबों रुपए के बल पर विदेशी ईसाई तत्त्व भारत में जिस प्रकार राजनैतिक षड़यन्त्र रच रहे हैं उन से हमारा धर्म, राष्ट्र और संस्कृति संकट में पड़ गयी है।

उन्होंने यदि साधनों के बल पर हमें चुनौती दी है तो हमें सत्य के बल पर इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिये और स्थान-स्थान पर ऐसी समितियां स्थापित कर दृढ़ संकल्प के साथ विदेशी पादरियों के षड़यंत्र विफल करने चाहिाएं

जन-ज्ञान प्रकाशन, वैदिक साहित्य प्रकाशन के अतिरिक्त ईसाईयत के विरुद्ध भी प्रभावशाली साहित्य छाप रहा है, निर्धन आर्य समाजों को बिना मूल्य भी साहित्य देने का यत्न किया जा रहा है। भारत को मिटाने का स्वप्न देखने वाले अराष्ट्रीय तत्त्वों से जूझने का सबल स्वर ही इस आक्रमण से रक्षा कर सकेगा। अब सोने का नहीं जागने का समय है।

—भारतेन्द्रनाथ

प्रत्येक आर्य पदिवार में चारों वेद होने ही चाहिएं

यह हमारी इच्छा है

इस इच्छा की पूर्ति के लिए हमने प्रत्येक आर्य परिवार में चारों मूल वेद, सजिल्द, बढ़िया कागज, २००० पृष्ठ सस्वर, पहुंचाने का निश्चय किया है।

और अब दीवाली तक

चारों मूल वेद केवल १०) में

जन-ज्ञान के सदस्यों को दिए जा रहे हैं।

१०) मूल्य और ३) डाक व्यय प्राप्त होने पर रजिस्ट्री से चारों वेद आपको भेज दिए जाएंगे।

जो जन-ज्ञान के सदस्य नहीं हैं या जो सदस्य अधिक सैट मंगाना चाहें वे १२) मूल्य और ३) डाक व्यय भेजें। १ से अधिक सैट रेल से भेजने और १० सैट मंगाने तक ४) ही रेल डाक पैंकिग व्यय आएगा। धन अग्रिम भेजें। वी. पी. पी. नहीं भेजेंगे।

घर-घर में वेद पहुंचाइए

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह रोड नई दिल्ली-५

धरती का अंधेरा मिटाया

सत्यार्थ प्रकाश ने

महर्षि दयानन्द के इसी महान् ग्रंथ का सार और समझने
की कुंजी प्रस्तुत है--

महान् विद्वान पं हरिशरण सिद्धांतालंकार द्वारा

४० वर्षों तक सत्यार्थ प्रकाश मंथन के पश्चात् जो नवनीत
विद्वान लेखक को प्राप्त हुआ

उसे—दीपावली पर

मानव मन का अंधकार दूर करने के लिए

जन-ज्ञान भेंट कर रहा है

"ज्ञान-प्रकाश"

के रूप में

"ज्ञान प्रकाश" अपने ढंग का अनोखा वैदिक विचारधारा प्रसार के
लिए अनुपम ग्रंथ रत्न है। यह ग्रंथ पढ़कर मन और मस्तिष्क
का अंधेरा भाग जाएगा।

**दयानन्द के अनुयायियो ! इसे हजारों की संख्या में
मंगाओ और सच्ची दीपावली मनाओ।**

प्रचारार्थ मूल्य

१५ अक्टूबर तक धन सहित आदेश भेजने पर
मूल्य १) । ७.५० की १०। १६) की २५। ३०) की ५०।
५५) की १०० और १२०) की २५०। ४००) की
१००० प्रतियां दी जाएंगी।

पुस्तक की लागत ८० पैसे से अधिक जाएगी। कम मूल्य दान की प्राप्त राशि
से किया गया है।

शीघ्रता करें और अपनी प्रतियां तुरंत सुरक्षित कराएं

जन-ज्ञान प्रकाशन

१९५७ हरध्यानसिंह रोड नई दिल्ली-५

केनोपनिषद्

पहला खण्ड

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः,
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति,
चक्षु श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।।१।।

किस से भेजा हुआ मन अपने अभीष्ट लक्ष्य पर गिरता है (जाता है)? किससे जोता गया (नियुक्त हुआ) प्रथम प्राण अपने मार्गों में जाता है? यह वाणी जिसे कि मनुष्य बोलते हैं किससे प्रेरित होती है? कौन देव चक्षु और श्रोत्र को उनके कार्यों में नियुक्त करता है ।।१।।

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यत्,
वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।

जो श्रोत्र के पीछे श्रोत्र है, मन का मन है, वाणी के पीछे शब्द है, वही प्राण-वायु का प्राण है, चक्षु के पीछे चक्षु है। विवेकी मनुष्य मन, प्राण और इन्द्रियों के द्वन्द्वों का परित्याग करके इस लोक का अतिक्रमण कर जाते हैं और अमर हो जाते हैं ।।२।।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ।
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्य चचक्षिरे ।३।

वहां न चक्षु पहुंचती है, न वाणी पहुंचती है, न मन पहुंचता है। ऐसे तत्व का जिस प्रकार उपदेश देना चाहिए यह हम न सामान्य रूप में जान पाते हैं न विशेष रूप में (पूर्णतया) जान पाते हैं; कारण वह तत्व ज्ञात से भिन्न है और अज्ञात से अतीत ऊपर है; ऐसा हमने उन पूर्व-पुरुषों से सुना है जिन्होंने हमारी बुद्धि के प्रति उस तत् का व्याख्यान किया ।।३।।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेवं ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।४।

जो शब्द के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, जिसके द्वारा शब्द अभिव्यक्त होता है, उसे ही तू ब्रह्म जान; मनुष्य इस जगत् में जिन पदार्थों के प्रति आसक्ति और चेष्टा किया करते हैं वह सब ब्रह्म नहीं है ।।४।।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।५।

जो मन के द्वारा विचार नहीं करता, जिसके द्वारा मन विचारा जाता है उसे ही तू ब्रह्म जान। मनुष्य इस जगत् में जिन पदार्थों के प्रति आसक्ति और चेष्टा किया करते है वह सब ब्रह्म नहीं है ।।५।।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।६।

जो चक्षु से नहीं देखता, जिसके द्वारा प्राणी चक्षु के दर्शन रूप व्यापारों को देखता है, उसे ही तू ब्रह्म जान; मनुष्य इस जगत् में जिन पदार्थों के प्रति आसक्ति और चेष्टा किया करते हैं वह सब ब्रह्म नहीं है।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।७।

जो श्रोत से नहीं सुनता, जिससे सुनना सुना जाता है, उसे ही तू ब्रह्म जान; मनुष्य इस जगत् के जिन पदार्थों के प्रति आसक्ति और चेष्टा किया करते हैं वह सब ब्रह्म नहीं है ।।७।।

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।८।

जो प्राणवायु के द्वारा श्वास नहीं लेता, जिसके द्वारा प्राणवायु अपने मार्गों में ले जाया जाता है, उसे ही तू ब्रह्म जान; मनुष्य इस जगत् में जिन पदार्थों के प्रति आसक्ति और चेष्टा किया करते हैं वह सब ब्रह्म नही है ।८।

दूसरा खण्ड

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि
नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु,
मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ।।१।।

यदि तू ऐसा मानता है कि मैं उसे भली प्रकार जानता हूं तो निश्चय ही तू ब्रह्म का स्वल्प रूप जानता है । इसका जो रूप तू (अध्यात्म) है और इसका जो रूप देवों में (अधिदैवत) है इसका तुझे विवेचना करके निश्चय करना चाहिये । ऐसा होने पर ही यह कहा जा सकता है कि वह ज्ञात है ।।१।।

नाहं मन्ये सुवेदित नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ।२।

मैं यह नहीं मानता कि मैं उसे भली प्रकार जानता हूं, तथापि मैं यह जानता हूं कि वह मुझे अज्ञात नहीं है । हममें से जो इस बात को जानता है वह उस को जानता है । वह जानता है कि वह तत् मुझे अज्ञात नहीं है ।२।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्

जिसने उसे मानस विचारों में आबद्ध किया है वह उसे नहीं जानता; जिसने उसे इस प्रकार बद्ध नहीं किया वही उसका विचार रखता है । इसी प्रकार जो उच्चतर मन के द्वारा उसका प्रत्यक्ष करके उसे मूलभूत विचारों में आबद्ध करते हैं उनके उस उच्चतर मन को भी वह अज्ञात है; जो इस प्रकार आबद्ध करने का यत्न नहीं करते उन्हें वह ज्ञात है ।।३।।

प्रति बोधविदितं मतममृत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्

जिस समय प्रकाश ग्रहण करने वाले प्रत्यक्ष के द्वारा उसका ज्ञान होता है तभी यह कहा जा सकता है कि मनुष्य उसका (सच्चा) विचार रखता है, कारण तब मनुष्य अमृत्व को प्राप्त कर लेता है । ब्रह्म को अपना आत्मा अनुभव करके मनुष्य प्राप्त करने की शक्ति पाता है और समस्त भूतों में एकमेव ब्रह्म के ज्ञान के द्वारा वह अमृत को प्राप्त करता है ।।४।।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदी-महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।५।।

यदि इस जगत् में, इस देह में ही मनुष्य उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है तो वह अपने सत्य स्वरूप को प्राप्त हो जाता है; यदि मनुष्य यहां उस ज्ञान को नहीं प्राप्त करता तो अत्यधिक विनाश होता है । विवेकी मनुष्य सब प्रकार के भूतों में उस तत् को पहचान कर इस लोक का अतिक्रमण कर जाते हैं और अमर हो जाते हैं ।।५।।

अमरगीत

गीत गाते ही चलेंगे !
हम मरण के द्वार पर भी जिन्दगी के गीत गाते ही चलेंगे !

जब विदा के अश्रु-गद्‌गद्-क्षण हमें व्याकुल करेंगे,
मोह के उत्कण्ठ भुजबन्धन प्रगति को बांध लेंगे ;
जब पुकारेगा धरा का प्रेम मर्माहत स्वरों से,
और टकराकर हृदय जब चूर्ण होगा पत्थरों से ।
हम प्रलय-दावाग्नि में भी चांदनी-से
मुस्कराते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

जब पराजय पर पराजय ध्येय से विचलित करेगी,
और श्रावण-वारि-धारा मार्ग कर अवरुद्ध लेगी ;
मद-भरी ललकार गूंजेगी किसी की प्राण-वन में,
छोड़ देंगे साथ दुर्दिन देख सहचर भी विजन में ।
हम प्रबल तूफ़ान में भी दीप आशा का
जलाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

ज्योतिधर को लील लेगा जब सघन तम-तोम भीषण,
और करने जब दिशाएं भी लगेंगी करुण क्रन्दन ;
जब नहीं होगा प्रकाशित एक भी तारा गगन में,
जब निराशा की अमा होगी सिसकती उर भवन में ।
दुःख-ताण्डव-नृत्य में आनन्द - उत्सव
हम मनाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

आपदाओं की घटा काली क्षितिज पर जब घिरेगी,
जब गरज घनघोर नभ से टूटकर बिजली गिरेगी ;
खेलता प्रतिकूल होगा जब तरंगों से प्रभंजन,
और नयनों में भरा दिग्कालिमा का प्रचुर अंजन ।
नाश-पारावार में भी नाव अपनी
हम बढ़ाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

—स्व० श्री आरसी प्रसाद सिंह

रुक नहीं सकते चरण, बढ़ते रहेंगे ये निरन्तर,
और पहुंचेंगे किसी दिन ज्योति के अन्तिम शिखर पर ;
मृत्यु की संहार-लीला में अमर सन्देश देंगे,
और मंगल - मूर्त्ति के दर्शन अमंगल में करेंगे ।
काल की कटु रागिनी से कण्ठ अपना
हम मिलाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

मौन मन-वीणा न होगी, शेष जीवन-स्वर न होगा,
और प्राणों का कभी नीरव अमृत-निर्झर न होगा ;
अन्त तक भी श्वास के ये खग चहकते ही रहेंगे,
और नव-नव कल्पना के दीप जलते ही रहेंगे ।
द्वन्द्व-झंझा-नाद में भी प्रेम-वंशी
हम बजाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

जब नहीं अनुकूल-सा होगा धरा का एक कण भी,
शत्रु बन आ जाएंगे जब सामने अपने स्वजन भी ;
कांपकर विश्वास-बल भी जब खिसकने-सा लगेगा,
वज्र जब दुर्भाग्य का दुर्दम्य मस्तक पर गिरेगा,
लोक-पथ पर दिव्य सुख की फूलमाला
हम बिछाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

जायगा योंही युगों तक मस्त यह यौवन मचलता,
है मिलन जिसका, उसी की है विरह की भी विकलता;
मांग सकते हैं किसी से भी नहीं आलोक-भिक्षा,
कल्प तक अविकल करेंगे स्वर्ण-अरुणोदय-प्रतीक्षा ।
और मरु वन-कुंज में सौन्दर्य-धारा
हम बहाते ही चलेंगे !
गीत गाते ही चलेंगे !

'रंग के यह ढंग'

● रोग को छिपाना हानिकर है। भूख न लगना भी एक रोग माना गया है। सब कुछ होते हुए भी भूख नहीं लगती। होते हुए के प्रयोग हेतु वैद्य तथा डाक्टर से भूख लगने की औषधि ली जाती है। एवं प्रभु से भूख न लगने का रोग कहकर मानसिक तृप्ति करनी चाहिए कहीं प्रभु कृपा से उसके नाम की भूख का वर मिल जाए तो जीना ही बदल जाए। प्रभु चरणों में स्पष्ट कहा जाए कि मुझे निज नाम की भूख दो, निज नाम की।

● समझदार माताएं घर के बर्तन निज घर की राख से साफ़ करने में कुशलता मानती हैं। एवं समझदार साधक निज मैल आन्तरिक साधनारूपी राख से शुद्धि प्राप्त करते हैं। राख भी अपनी, प्रयास भी अपना, मन भी अपना, मनन भी अपने से ही सफलता लाभ होती है।

● परम पिता के प्रेम का यह पारावार कि भिन्न से भिन्न, अधिक से अधिक दान वहां रखे हैं। भक्तों को फल पान ही करना है। मां दयारूपी भोजन के थाल लिए खड़ी हैं पर मैं इतना मूर्ख कि अभी तक यह नहीं तै कर पाया कि क्या खाऊं और क्या छोड़ दूं। प्रभु ये जहां इतने प्रकार के भोजन दिए हैं वहां योग्य निर्णय का भी बल दो ताकि शुभ वर पाकर अनुगृहीत हो सकूं। निज आध्यात्मिक उन्नति में मन तुम्हारे उज्ज्वल स्वरूप के दर्शन पा सकें।

● बिना पुरोहित के यज्ञ वर्जित है। ऐसा यज्ञ किया भी नहीं जाता। सामग्री जुट रही है पर पुरोहित जी आएं तो यज्ञ सम्पन्न हो। निज जीवन यज्ञ के लिए परम पिता से अन्य कोई श्रेष्ठ पुरोहित मिलता नहीं। मार्ग भी उसका। लक्ष्य में भी वह। पुरोहित भी यदि वह स्वयं बन जाए तो बेड़ा पार हो जाए। अतः उसी से ही प्रार्थना की जाए कि पुरोहित जी मेरे यज्ञ करा दीजिए न ! यदि वह पुरोहित बनना स्वीकार कर लें तो सफलता सिद्ध ही सिद्ध है।

● भगवान बड़े दयालु हैं। पुकार भी सुनते हैं। भक्त ने जब प्रार्थना की प्रभु ने दया करके दान देना चाहा। पर जब पात्र में दान डालना चाहा तो पात्र ही मैला पाया। क्या विचित्र अवस्था कि याचना तो हम करते हैं पर यह विचार न करके कि दान लेंगे किस में ? कम से कम पात्र साफ़ करके तो दान लेने चलो ताकि लेने और देने वाले को भी आनन्द आ जाए। शुद्धि भी सत्पात्रता का महान् लक्षण है।

—भीमसेन दीवान

वेद ही क्यों?

आचार्य उदयवीर शास्त्री

विज्ञान की प्रगति ने ज्ञान की सीमाएं विकसित कर दी हैं। इस बदलते हुए विकास के प्रवाह में जब अन्य ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा करने वाले ग्रंथ लड़खड़ा गए हैं, वहां 'वेद' विज्ञान और अन्वेषणों की कसौटी पर अपना और भी अधिक निखार जन-मानस के प्रबुद्ध मन पर अंकित कर रहे हैं। ज्ञान यदि आनन्द का प्रेरक है तो वस्तुतः 'वेद' के अतिरिक्त अन्यत्र उसका आदि मूल पाना कठिन है। भारत के महान् दार्शनिक अनेक ग्रंथों के रचयिता, मंगला प्रसाद पारितोषक प्राप्त आचार्य उदयवीर शास्त्री का यह लेख आपके मानस को नई दिशा और आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सकेगा —सम्पादक

कहा जाता है, प्राणि-जगत् चौरासी लाख शाखाओं में विभाजित है। इनको चौरासी लाख योनियां कहते हैं। ये योनियां अतिसूक्ष्म कृमि-कीटों से लगाकर महाकाय प्राणियों तक फैली हुई हैं। इनमें ऐसे सूक्ष्म प्राणी हैं, जो इन चर्म-चक्षुओं से देखे नहीं जा सकते। ऐसे भारी भी हैं, जिनका भार सैकड़ों और हजारों मन में आंका जाता है; गेंडा, हाथी, ह्वेल मछली आदि। इन सभी प्राणियों को प्राचीन विचारकों ने चार भागों में बांट दिया है—ऊष्मज, उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज। पहले भाग में कृमि-कीट आदि सूक्ष्म जन्तु आते हैं। इनको स्वेदज भी कहा जाता है। पर स्वेदज कुछ स्थूल प्रकार के जन्तु हैं, चक्षु से अदृश्य जन्तु इसकी सीमा में नहीं आते। इन सबका आकलन 'ऊष्मज' पद में हो जाता है। समस्त ओषधि वनस्पति तृण वीरुध आदि वर्ग 'उद्भिज्ज' पद में परिगणित होता है, चाहे वह जल में हो अथवा भू पर। तीसरा विभाग अण्डज है, जिसमें अनेक प्रकार

के प्राणी आ जाते हैं। प्रायः समस्त पक्षी, विविध प्रकार के सरीस्टप और जलचरों का इस विभाग में आकलन होता है। चौथे भाग में प्रायः समस्त स्थूलकाय पशु और मानव का परिगणन होता है। प्राणि-जगत् का कोई ऐसा वर्ग नहीं रह जाता, जिसका समावेश इन विभागों में न होता हो।

इस समस्त प्राणि-जगत् को अन्य प्रकार से तीन भागों में भी विभाजित किया जाता है—भूचर, जलचर, नभचर। इनमें पहले प्रकार का विभाजन प्राणियों के विशिष्ट उत्पत्ति प्रकार पर आधारित है, और दूसरा प्रकार उनके भिन्न निवास प्रदेश पर। यह केवल प्रवृत्ति निमित्त के भेद से दो प्रकार का विभाजन है; इसमें किसी प्रकार के विरोध की कल्पना नहीं की जा सकती।

सभी प्राणियों में एक नैसर्गिक ज्ञान का अस्तित्व रहता है, पर वह अत्यन्त सीमित है, और वह समस्त प्राणियों में समान रूप से पाया जाता है। उसकी केवल दो दिशा हैं—(१) जीवन निर्वाह एवं सुरक्षा, (२) साजात्य-प्रजनन की भावना। मानव को छोड़कर समस्त प्राणि-जगत् इतने मात्र नैसर्गिक ज्ञान की सीमा में अपनी अपेक्षित आवश्यकताओं को सम्पन्न करता हुआ जीवन-यात्रा का निर्वहण किया करता है। इसके लिए उसे किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती। बिना सिखाये पानी में तैरता व आकाश में उड़ता है और भू पर चौकड़ी भरता है, यह सब विभिन्न योनियों के अपने विशिष्ट स्तर एवं परिस्थितियों के अनुसार गतिक्रम यथायथ चला करता है। इसमें कभी किसी ऐसे व्यतिक्रम की संभावना नहीं होती, जो एक नये व्यापारान्तर को अभिव्यक्त करे।

हम देखते हैं, मानव के क्षेत्र में यह परिस्थिति नहीं है। केवल नैसर्गिक ज्ञान पर मानव-जीवन नहीं चलता। इसी कारण कपिलशास्त्र में प्राणि-जगत् का जो विभाजन किया गया है, वह इस परिस्थिति पर पुष्कल प्रकाश डालता है। वहां प्राणि-जगत् के तीन वर्ग बताये—मनुष्य, दैव, तैर्यक। वस्तुतः मूलभूत विभाग यहां केवल दो हैं—मनुष्य और तैर्यक। समस्त प्राणि-जगत् का इन्हीं दो में समावेश हो जाता है। मानव वर्ग को छोड़कर शेष समस्त प्राणि-जगत्-कृमि कीट पशु-पक्षी जलचर, नभचर, भूचर आदि—तैर्यक वर्ग में अन्तर्हित है। इस वर्ग का आरम्भ आदि सृष्टिकाल में जैसा होता है, वह समस्त चालू सर्गकाल में वैसा ही चलता रहता है; क्योंकि वह केवल नैसर्गिक ज्ञान पर अवलम्बित रहती है; उसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं आ पाता। परन्तु मानुष्य वर्ग में ऐसा नहीं है। यद्यपि आदि-सर्गकाल में मानुष्य वर्ग एक समान प्रादुर्भूत होता है, पर साधारण आकृति साम्य रहने पर भी मानवीय बौद्धिक वृत्तियों के वैविध्य के कारण सामाजिक स्थिति में विभिन्नता आ जाती है। संभवतः इसी कारण आभिधानिकों ने पशु आदि के समूह को 'समज' और मानव समूह को 'समाज' नाम दिया है। उसी मानवसर्ग को वृत्तिभेद के आधार पर आठ भागों में सांख्यशास्त्रकार ने विभक्त किया है, जिसको 'दैवसर्ग' नाम दिया गया है। बौद्धिक वृत्तियों को 'देव' मानकर उनके आधार पर वर्गीकरण होने से उक्त सर्ग को यह नाम दिया गया।

प्राणि-जगत् में मानव निःसन्देह सबसे श्रेष्ठ है; पर इसकी श्रेष्ठता किसी भी अंश में केवल नैसर्गिक ज्ञान पर आधारित नहीं है। मानव ने जिस ज्ञान को प्राप्त कर प्राणि-जगत् में सर्वश्रेष्ठता के पद को पाया है, उस ज्ञान से सम्पन्न ही मानव समाज संसार के ऐसे अस्तित्व की मूल-धुरा है। इस प्रकार बुद्धिवृत्तियों के उत्तम अधम आदि भेदों के आधार पर मानव समाज के संघटन की दृष्टि से प्राणि-जगत् की रचना के प्रसंग में दैवसर्ग का ऐसा वर्णन किया जाना संभव है।

प्राचीन शास्त्रों में वर्णन है—पुरा-काल में एक अवसर ऐसा आया, जब सत्त्वगुण का संकोच और रजोगण आदि का विस्तार होने लगा; समाज में सच्चे अपेक्षित ज्ञान की ओर से अरुचि होने लगी; आचरणीय शास्त्रों का प्रचार मन्द पड़ गया, और समाज विश्रृंखलित-सा हो गया। उस समय के सामाजिक नेताओं ने सम्मिलित होकर विचार किया, और घोर परिश्रम तथा अथक प्रयत्नों द्वारा समाज को पुनः संघटित किया; एवं उसे सुचारु रूप से संचालित रखने के लिए विविध शास्त्रों का उद्धार व निर्माण किया। इस कार्य में अनेक महान आत्माओं का पूर्ण सहयोग था। इसी कारण उनकी गणना लोककर्त्ता महापुरुषों में की जाती है। उन महापुरुषों ने वस्तुस्थिति को तलपर्यन्त समझकर जिन शास्त्रीय विधिविधानों का प्रणयन व प्रचलन किया, उनमें समस्त तत्त्वों एवं भावों का त्रिगुण के आधार पर विवेचन है, जो सामाजिक स्थिति एवं संघटन के विशाल भवन की आधारशिला है। इसी महान सामाजिक अनुष्ठान में उन महापुरुषों के लोक-कर्तृत्व की भावना निहित है।

समाज का अनवरत निर्बाध संचालन विवाह-संस्था पर आधारित है। विवाह क्या है? साजात्यप्रजनन की स्वाभाविक अभिलाषा व प्रवृत्ति का समाजोपयोगी समाधान। यह प्रवृत्ति प्राणिमात्र में स्वाभाविक है। इसके समाधान का रूप है, नर-मादा का यथावसर सम्पर्क। मानव के अतिरिक्त अन्य समस्त प्राणि-जगत् में इस अवसर की अवहेलना नहीं देखी जाती। यदि कहीं अनवसर पर किसी पक्ष की ओर से सम्पर्क के लिए प्रवृत्ति उभरे, तो अन्य पक्ष की ओर से उसका स्वभावतः प्रतिरोध किया जाता है, वह प्रवृत्ति असफल रहती है। मानव में ऐसा नहीं देखा जाता, वह अपने बुद्धिमद में अवसर की अवहेलना कर जाता है; अपनी बुद्धि के कलंक को मिटाने के लिए यद्यपि उसने ऐसी प्रवृत्ति को 'पशुवृत्ति' नाम दिया है; पर कहें, तो यह वस्तुस्थिति का स्पष्ट शीर्षासन है। मानव में सम्पर्क की भावना केवल साजात्यप्रजनन के लिए हो, ऐसा नहीं देखा जाता; वैषयिक वासनाओं के उफान को शान्त करने के लिए भी वह होता है। उसको 'पशुवृत्ति' तभी कहा जाता है; जब सामाजिक व्यवस्थाओं को भी इस दिशा में खुले आम तोड़ डालने की स्थिति आ जाती है। आधुनिक मनोविज्ञान ने इन प्रवृत्तियों को खुलासा करने का अच्छा प्रयास किया है।

मानव निस्सन्देह विशिष्ट बुद्धि एवं प्रतिभायुक्त प्राणी है। उन लोकनेता महापुरुषों ने मानव की प्रवृत्तियों के हानि-लाभ को गहराई तक परखा, और राष्ट्र-रक्षा की भावना से उनके लिए एक व्यवस्था निर्धारित की, उसी का नाम

'विवाह-संस्था' है। मानव ने अपनी दुर्बलता से जिस स्वाभाविक व्यवस्था की अवहेलना की, उसे इस रूप में नियमित व सीमित कर दिया गया। समाज के पुष्ट व व्यवस्थित रहने का यह एक आधार है।

नर-मादा व पुरुष-स्त्री का सम्पर्क किन्हीं भी प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर हो, उसका परिणाम केवल साजात्यप्रजनन है; इसलिए समस्त ऐसे संपर्कों को विवाहसंस्था में सम्मिलित कर लिया गया। प्राचीन व्यवस्थापित सामाजिक संघटन को देखते हुए उन प्रवृत्तियों के तीन ही रूप हो सकते हैं—सात्त्विक, राजस, तामस। इसी आधार पर मानव समाज में विवाह-संस्था आठ भागों में विभाजित समझी गई। भारतीय समाजशास्त्र में उसका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। विवाह-संस्था की वे आठ विधा हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस, पैशाच।

दैव सर्ग के आठ भेद

कापिलशास्त्र में वर्णित 'दैवसर्ग' के आठ भेदों का इनसे सन्तुलन कीजिये। वे आठ भेद हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, पैशाच। यहां तीसरे, चौथे और छठे नाम में अन्तर प्रतीत होता है विवाह नामों में जिसे 'दैव' कहा है, वह यहां 'ऐन्द्र' पद से वर्णित है। कापिलशास्त्र में इस समस्त सर्ग का 'दैव' नाम होने से विवाह-संस्था के 'दैव' भेद को 'ऐन्द्र' पद से कह दिया गया है। इसमें अर्थभेद कुछ नहीं है। विवाह-संस्था का 'आर्ष' भेद कापिलशास्त्र के दैवसर्ग में 'पैत्र' अथवा 'पितृ' पद से वर्णित है। 'ऋषि' तथा 'पितृ' पद सोम्य भाव के द्योतक हैं; इससे इनकी समानता अभिलक्षित होती है, विवाह के 'आसुर' भेद की भावना से कापिलशास्त्र के दैवसर्ग में 'यक्ष' एवं 'नाग' पद का संकेत है; किसी स्थल में 'आसुर' पाठ ही है। वैसे असुर 'पूर्वदेव' [अ० कोष, १।१२] हैं। इस वर्ग का किसी निमित्त से असुर नाम होने के पूर्व ये देव थे; अतः इस वर्ग का 'यक्ष' पद से संकेत करना असामंजस्यपूर्ण नहीं है।

उक्त सन्तुलन के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं, कि कापिलशास्त्र में वर्णित दैवसर्ग, सात्त्विक आदि आन्तर-वृत्तियों की प्रबलता व उग्रता पर विभाजित मानव वर्ग का ही एक विश्लेषणमात्र है। यह विश्लेषण मानव समाज के गुणनुसारी संघटन की दृष्टि से किया गया। इस रूप में समाज के संघटन का मूल आधार विवाह-संस्था है, उसी के अनुसार यह विभाजन है। इसमें प्रथम चार विवाह जिन भावनाओं से प्रेरित व अभिभूत होकर किये जाते हैं, वे सत्त्वगुण प्रधान होती हैं। अगले दो विवाह रजोगुणप्रधान तथा अन्तिम दोनों तमोगुणप्रधान भावनाओं से अभिभूत समझने चाहिएं। गुणों की पारस्परिक न्यूनाधिकता ही इनके एकाधिक विभाग की प्रयोजक है। अन्यथा वे सब एकमात्र मनुष्य समाज के अन्तर्गत हैं। फलतः समस्त प्राणि-जगत् का तैर्यक और मानुष्य दो विभागों में पूर्णतया समावेश हो जाता है।

प्राणिमात्र को सामान्यबुद्धि स्वभावतः प्राप्त होती है। उस दृष्टि से समस्त प्राणी समान हैं। वह समानता आहार, विहार [सजात्यप्रजनन] पर आधारित है। तैर्यक वर्ग केवल इतने पर—अपनी समस्त

सर्गकालिक यात्रा के लिए—अवलम्बित रहता है; परन्तु मानव ने इसके अतिरिक्त बुद्धिगत विशेषता को प्राप्त किया है। यह एक निर्विवाद सत्य है, कि मानव को यह विशेषता नैमित्तिक ज्ञान का लाभ हुए बिना संभव नहीं। सामान्य ज्ञान बाह्य सहयोग से ही विशेषता के स्तर पर पहुंचता है। उत्पत्ति के अनन्तर पशु या पक्षी बिना सिखाये स्वभावतः पानी में तैरता व हवा में उड़ता है; परन्तु उसकी यह स्थिति पूर्णरूप से सीमित है, उसमें कभी किसी विशेषता का उन्मेष नहीं होता; परन्तु मानव अपाहज उत्पन्न होकर भी सिखाये जाने से सीधा-उलटा-तिरछा सब तरह तैर सकता है। सुरक्षा की दृष्टि से स्वयं न तैरे, तो अनेक प्रकार के साधन जल-संचरण के बना सकता है। केवल हवा में नहीं, वह उड़कर आकाश में वहां तक पहुंच सका है, जहां हवा का नाम तक नहीं। आज हमें यह सब साधारण बात लगती है, परन्तु यह एक महती समस्या है, कि आदि-सर्गकाल में मानव का व्यवहार क्या रहा होगा?

आज तक इस समस्या के समाधान के लिए मनीषी विद्वानों ने केवल दो मार्ग सुझाये हैं—एक आस्तिकवाद का मार्ग, दूसरा नास्तिकवाद का। इन पदों का प्रयोग हमने एककी अभिनन्दना तथा दूसरे के प्रति घृणा की भावना से नहीं किया है, न हमारा ध्येय किसी की स्तुति या निन्दा करना है। केवल वस्तुस्थिति का विचार कर इन पदों का प्रयोग किया गया है। वस्तुस्थिति है—एक अनायास आज्ञेय तत्त्व का स्वीकार करना और स्वीकार न करना। समस्त विश्व के नियन्ता व्यवस्थाता के रूप में एक सर्वोच्च महती शक्ति का स्वीकार करना 'आस्तिकवाद' है, स्वीकार न करना नास्तिकवाद।

दूसरे पक्ष का मार्ग विकासवाद के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। हम इस वाद के विस्तार अथवा पक्ष-विपक्ष में कुछ कहने के लिए उतरना नहीं चाहते, न इसका यह उपयुक्त अवसर है। हमारा तात्पर्य उक्त समस्या के समाधान का एक मार्गनिर्देशनमात्र है। इस मार्ग के अनुसार प्राणि-वर्ग प्रादुर्भाव का प्रारम्भ होने के अनन्तर करोड़ों अरबों वर्ष बीत जाने पर प्रारम्भिक प्राणी विकसित होकर मानव के रूप में आ पाता है। फिर धीरे-धीरे विकास करता हुआ वह इस दशा में आया, जैसा अब दीख रहा है। अब से कितने वर्ष पूर्व वह इस आकृतिविशेष की अवस्था में आ चुका था, इसका एक टूक निश्चय इस वाद के उपज्ञ अथवा अन्य अनुयायी विचारकों ने अभी तक नहीं कर पाया है। साधारण रूप से इसके लिए लाखों वर्षों की अनिश्चित संख्या में काल का अनुमान किया जाता है।

जो हो, पर इस स्थिति में यह विचारणीय है, भूतल पर वर्तमान मानव समाज

"जिनका शरीर अहंकार रूपी विष से नष्ट नहीं हुआ, वह सब प्रकार के कार्यों को करते तथा उनका फल भोगते हुए भी सभी राग-रोगादि दोषों से मुक्त हैं।" —योगवाशिष्ट

ज्ञान-स्तर की दृष्टि से ऊंचे से ऊंचा और नीचे से नीचा दोनों रूपों में उपलब्ध है। समाज में ज्ञान और अज्ञान के दोनों स्तर अपनी सीमा को छूते हुए से दिखाई दे रहे हैं। ज्ञान की विविध शाखा हैं, मानव समाज का एक भाग ज्ञान की एक शाखा के उच्चस्तर पर पहुंचा हुआ लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करने की योजना को कार्यान्वित करता दिखाई दे रहा है। इसके विपरीत एक भाग अभी तक भी पूर्ण अज्ञानान्धकार में डूबा हुआ है। यदि इस कथन में सच्चाई का कुछ अंश है, कि मानव ने केवल अपने नैसर्गिक ज्ञान को धीरे-धीरे विकसित करते—बिना किसी नैमित्तिक ज्ञान के साहाय्य के—उन्नत दशा को अथवा ज्ञान की वर्तमान दशा को प्राप्त किया है, तो इस शंका का समाधान होना चाहिए, कि उस समाज ने सहस्रों-लाखों वर्षों में भी आज तक इस दिशा में कुछ भी विकास नहीं किया है, जो अब भी जंगलों में पशुओं समान नंगा घूमता है। नैसर्गिक ज्ञान प्राणी के जीवन-निर्वाह और साजात्यप्रजनन तक सीमित है। मानव समाज का कुछ अंश आज भी उसी स्तर पर है। वहां नैसर्गिक ज्ञान के आधार पर इतने लम्बे काल में विकास का थोड़ा भी अंश क्यों नहीं?

कहा जा सकता है, उस समाज को विकास के अनुकूल वातावरण नहीं मिला। परन्तु ऐसा कथन सर्वथा शिथिल है। प्रारम्भ से भूतल पर जहां मानव का प्रादुर्भाव हुआ—साधन समान रूप से उपलब्ध होते रहे हैं। यदि उस समाज के लिए अनुकूल साधनों की उपलब्धि न होती, तो आज तक निरन्तर वह जीवित कैसे रहा होता? विकास के लिए अनुकूल वातावरण का इसके अतिरिक्त तात्पर्य क्या है? हम देखते हैं, उन प्रदेशों में—जहां का समाज लगभग सौ वर्ष पहले तक अज्ञानान्धकार में डूबा हुआ था, अन्य शिक्षित जातियों के वहां जाने पर उनके सम्पर्क से थोड़े ही समय में ज्ञान-स्तर पर्याप्त ऊंची सीमा तक पहुंच गया है। जो कार्य नैसर्गिक ज्ञान के आधार पर सहस्रों-लाखों वर्षों में न हो सका, वह नैमित्तिक ज्ञान के आधार पर थोड़े ही समय में सम्पन्न हो गया।

मानव समाज का कुछ अंश ज्ञान की दृष्टि से उन्नत और कुछ अनुन्नत क्यों है? इस शंका का समाधान 'आस्तिकवाद' के मार्ग से सरलतापूर्वक हो सकता है। सर्ग के आदिकाल में मानव का प्रादुर्भाव किसी एक विशेष प्रदेश में हुआ माना जाता है। उस समय किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के मस्तिष्क में वह अचिन्त्य-शक्ति परमात्मा अपने सामर्थ्य से मानव के लिए पूर्ण उपयोगी ज्ञान का संक्रमण कर देता है। यह कोई अनहोनी बात नहीं है। आज अल्पशक्ति सम्पन्न मानव सम्मोहिनी विद्या में विशिष्ट निपुणता प्राप्त करके अन्य प्राणी [मानव हो या पशु आदि] के मस्तिष्क में अपने ज्ञान को संक्रान्त कर देते हैं। फिर परमात्मा तो अनन्तशक्ति है, उसके लिए ऐसा कर देना अतिसरल कार्य है। अनन्त विश्व की रचना करने वाले के लिए इसमें क्या कठिनाई या असंभावना हो सकती है? उस ज्ञान से प्रेरणा पाकर मानव समाज अपने अभ्युदय के मार्ग पर चल पड़ता है। उसी ज्ञान का नाम 'वेद' है। वह परंपरा आज तक चालू है।

इस अतिदीर्घकाल में मानव समाज

एक स्थान से समस्त भूतल पर फैल गया है। दूर-दूर तक फैले समाज में सैकड़ों-सहस्रों सदियों के कालान्तर से पारस्परिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाने से दूर के समाजों में पहली परम्परा परिवर्तित एवं विस्मृत होती रही हैं। इसमें उन-उन प्रदेशों के अनुसार जीवन-निर्वाह के सावनों की खोज ही कहा जा सकता है। उस ज्ञान की ओर से विमुख होने में आज भी हमारे सामने वही परिस्थिति है। किसी अन्तराल काल में समाज का कोई अंश किन्हीं कारणों से अपने पूर्व समाज से छिटककर कहीं ऐसे दूर प्रदेशों में जा पड़ा, जहां से पूर्व सम्बन्ध सद्यः सर्वात्मना विच्छिन्न हो गया; वह वहां की अज्ञात बाधाओं से अभिभूत होकर किसी सीमा तक पूर्वार्जित अपने ज्ञान-स्रोतों को मूलतः नष्ट कर बैठा। कालान्तर में वह समाज नैमित्तिक ज्ञान से विमुक्त हुआ अज्ञानान्धकार में रहने लगा। नैसर्गिक ज्ञान के आधार पर अपने जीवन-निर्वाह और साजात्यप्रजनन के द्वारा वह आज तक वर्तमान है; पर उसके नैसर्गिक ज्ञान ने—बाह्य नैमित्तिक ज्ञान के साहाय्य के बिना—किसी प्रकार के विकास में कोई कदम नहीं बढ़ाया। तात्पर्य यह, कि वर्तमानकाल में अज्ञानान्धकार में डूबा मानव समाज का भाग नैमित्तिक ज्ञान के ह्रास के कारण है।

यह भी संभव है, आदिकाल में समाज का कोई अंश उस उपलब्ध नैमित्तिक ज्ञान से महरूम रह गया हो; किन्हीं अज्ञात कारणों से वह ज्ञान उन तक न पहुंच सका उससे पहले ही वह अपने पूर्व समाज से विच्छिन्न हो गया। जिस समाज के भाग में वह नैमित्तिक ज्ञान की परम्परा अपने मूलरूप या परिवर्तित रूप में चालू रही है,

चिड़ियों की तरह हवा में उड़ना और मछलियों की तरह पानी में तैरना सीखने बाद अब हमें इन्सानों की तरह पृथ्वी पर चलना सीखना है।

—राधाकृष्णन

शिक्षा ने ऐसे लोगों की एक बड़ी संख्या तैयार कर दी है जो पढ़ तो सकते हैं परन्तु यह नहीं समझ सकते कि उन्हें क्या पढ़ना चाहिये।

—ट्रेविलियन

सच बोलने के लिए भी दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है—बोलनेवाले की और सुननेवाले की।

एकान्त से अच्छा साथी मुझे और कोई नहीं मिला। —थोरो

समाज का वही अंश ज्ञान की विविध शाखाओं को लेकर ज्ञान-स्तर की मर्यादाओं में चल रहा है। तात्पर्य यह, कि आज ज्ञान का जितना चमत्कार है, उसके मूल में नैमित्तिक ज्ञान की मजबूत बुनियाद है, उसी पर यह विशाल भवन आधारित है।

परमात्मा को मानने वाले उसे न्यायकारी मानते हैं। उसने विश्व में विस्तृत अनन्त विभूतियों का वितरण सबके लिए समान रूप से किया है। यह एक न्याय बात है, कि वह इन अनन्त प्राकृतिक विभूतियों के साथ मानव के सर्वाङ्गीण अभ्युदय के लिये उसके उपयोगी ज्ञान का भी प्रदान करे: यदि ऐसा नहीं होता, तो यह एकाङ्गी कार्य रहता है। वस्तु देकर उसके उपयोग की जानकारी न देना वस्तु का न देने के बराबर है। इसलिये यह आवश्यक है, कि इन विश्व-विभूतियों के प्रदान के

साथ यह 'ज्ञान' को भी प्रदान करता है। प्रचीन विचारकों ने इसे 'नाम' और 'रूप' का दान कहा है, नाम शब्द है, रूप-शेष समस्त विश्व 'ज्ञान' जब व्यवहार की दशा में आने को होता है, तब वह 'शब्द बन जाता है। वेद-ज्ञान का यही अस्तित्व है।

न्यायकारी परमात्मा ने मानव मात्र को जब समान वितरण किया है, तो इस का यही तात्पर्य होता है, कि अन्य नागरिक विभूतियों के समान मानव के प्रादुर्भाव के साथ ही ज्ञान का प्रदान होना चाहिये। भौतिक विभूतियां प्राणी के प्रादुर्भाव से पहले ही अस्तित्त्व में आ जाती हैं, क्योंकि वह उसके योग्य हैं। विशिष्ट ज्ञान का सम्बन्ध क्योंकि केवल मानव से है; विश्व में उसके उपयोग का माध्यम क्योंकि केवल मानव है, इसलिये उसका प्रदान मानव प्रथम प्रादुर्भाव के साथ होना उचित है। कालान्तर में जो ज्ञान इस दावे को लेकर प्रगट में आये, उनके औचित्य न्याय की कसौटी पर नहीं जंचता। क्योंकि उस के प्रादुर्भाव से पहले का मानव समाज उस से महरूम रह जाता है। फलतः उन्हें ईश्वरीय ज्ञान नहीं कहा जा सकता। अन्यथा ईश्वर का न्याय कहां रहेगा ?

ऐसे ज्ञान के अनुयायी लेखकों ने वेद के विषय में भी अत्यन्त बलपूर्वक यह प्रचार करने का प्रयास किया है, कि वेद-सृष्टि के आदि का ज्ञान नहीं, और वह मनुष्य की रचना है। वेद चाहे कभी का हो, पर उनकी इस भावना के पीछे छिपा भूत स्पष्ट बोल रहा है, कि वे अपने उन ग्रन्थों को मानव की रचना मानते हैं। उनकी रचना का काल तो सर्वविदित है। उन लेखकों के ऐसे कथन दूसरी लम्बी रेखा को मिटा-घटा कर अपनी रेखा के बराबर बनाने के समान हैं। इन्ही कारणों से यह कहा जाता है, कि ईश्वरीय ज्ञान वेद ही क्यों है। जैसा प्रथम कहा गया है, प्राणि-जगत् के दो वर्गों में से एक मानव-वर्ग नैमित्तिक ज्ञान के बिना कोई प्रगति नहीं कर पाता, इस कारण आस्तिकवाद के मार्ग को सृष्टिकरण के अनुकूल कहा जा सकता है। यह अनुकूलता दूसरे वाद में नहीं है। सर्गादि-काल के अनदेखे विषय गम्भीर हैं, विद्वान् विचार कर सकते हैं।

महर्षि दयानन्द ने कहा था—

जो परमेश्वर वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके, इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं ; इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए।

जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है, तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ मत वेदों, में कहा है, हम उसको मानते हैं।

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है।

संसार सागर की शाश्वत बूंद

पं० सत्यपाल शर्मा, वेदशिरोमणि, एम० ए०

परमात्मा है या नहीं, वह ज्ञान देता है या हम ने स्वयं पाया, शांति भौतिक पदार्थों में है या आत्म ज्ञान में, इन आधारभूत प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए मनुष्य भटकता रहा है। आज भी उसकी उलझन जारी है। लेखक ने कुछ प्रश्नों का सीधा-सरल और हृदयग्राही उत्तर देकर आपका मार्गदर्शन किया है। —सम्पादक

'अजी, अब आपके वेदों का क्या बनेगा?" मैंने पीछे घूमकर देखा। एक बाबू टाइप व्यक्ति, जो थे तो एक आर्य-समाज के प्रेमी ही—शायद सदस्य नहीं थे अन्यथा एकदम इतना बड़ा बम का गोला छोड़ने को तैयार न होते—बुशर्ट और पेंट में मेरे पीछे चले आ रहे थे और थोड़ा-सा परिचय हो जाने के कारण यह गोला उन्होंने मुझी पर छोड़ा था। मैं जानता था कि थोड़ा-सा पढ़ लिखकर अपने आप को सुविद्वान् समझने वालों के अब ऐसे ही प्रश्नों का हल करने के लिए तैयार रहना होगा अतः मुझे आश्चर्य तो नहीं हुआ, पर दुःख अवश्य हुआ कि आर्य-समाज के इतने सारे सत्संगों में जाने के बाद भी इनके विचार करने का स्तर अभी जहां का तहां ही है। मैंने भी यथा-शक्ति कोमलता का पुट लाते हुए पूछा। "कहिए ऐसी क्या भीड़ पड़ गई? वेदों को कहां से खतरा पैदा हो गया?" 'अजी, वाह पंडित जी! आप को पता नहीं चन्द्रमा को जीत लिया गया?" इतने उत्साह और जोश के साथ कह रहे थे मानो वे खुद अपनी मुट्ठी में उसे पकड़ लाए हों। 'चन्द्रमा को जीत लिया गया।' कैसा अहङ्कार भरा था इन शब्दों में। सोचा, हम मनुष्य भी कितने अल्पज्ञ हैं कि अपनी थोड़ी भी सफलता को, जिसमें निश्चय ही प्रभु की प्रेरणा सम्मिलित है और जिसे दिन रात गिर्जाघरों में चन्द्र-यात्रियों के स्वास्थ्य और उनके सक्षेम प्रत्यावर्तन के लिए प्रभु से प्रार्थना करने वाले पाश्चात्यों ने तो समझा, पर हम लोगों ने समझ कर भी नहीं समझा, अपनी बहुत बड़ी विजय मानने लगते हैं? और विजय किस पर—चन्द्रमा पर? आपसे चन्द्रमा ने कभी दुश्मनी तो मोल नहीं ली थी! कभी आप को अपनी छाती पर पैर रखने से उसने इन्कार तो नहीं किया था? हां उसकी मौन दृष्टियों में हम

पार्थिव मनुष्यों के लिए एक सस्नेह निमंत्रण--चुनौती भरा निमन्त्रण--अवश्य था और आज हमें इस बात की खुशी है कि हम उसके निमंत्रण का सक्रिय उत्तर दे सके। हम इसे अपने प्रयत्नों की सफलता के रूप में तो देख सकते हैं, पर यह सोचना कि हमने प्रकृति पर या उसके किसी अंश पर और उसके द्वारा प्रभु पर विजय पा ली एक बहुत बड़ा धोखा होगा।

मैंने इन सब भावनाओं में अपने आप को उस समय बहने दिया, शान्ति से बोला—"चन्द्रमा पर मनुष्य पहुंच गए तो उससे वेदों पर कौन सा तूफान आ पड़ा, भाई साहब ?" वे मेरी ओर कुछ ऐसी नज़रों से देखने लगे जैसे मैं बिल्कुल मूर्ख हूं और उनकी महान् बुद्धि की तह तक पहुंच पाने में असमर्थ रहा हूं। बोले "अब तो पंडित जी, आपको "चन्द्रमा देवता" कहना छोड़ देना होगा। अब वह देवता नहीं रहा।" और मैंने भी सोचा कितनी अहंता है हम मनुष्य में और कितना अज्ञान अभी है! पूछा मैंने तो क्या आपका मतलब है कि इन चन्द्रयात्रियों के पैर पड़ जाने से चन्द्रमा अब देवता नहीं रहा राक्षस हो गया? क्या मनुष्य के पैर इतने नालायक हैं ?" अब वे ज़रा सिटपिटाए। हिचकचाते हुए बोले "नहीं, यह मतलब नहीं है मेरा। आप लोग देवता उसी को कहते हैं न कि जिसके बारे में कुछ पता न लगे और जिससे कुछ भय खाना आवश्यक हो कि पता नहीं इसका मेरे जीवन पर क्या प्रभाव होगा, इसलिए अभी से इसकी प्रार्थना करने लगो—सो, अब तो वह बात खत्म हो गई--अब तो मनुष्य ने चन्द्रमा को अपनी आंखों से देख लिया, वहां की मिट्टी और चट्टान तक खोद लाया है और अभी तो वहां की बहुत कुछ चीजें लाएगा। सो, एक बार रहस्य खुल जाने पर वह देवता नहीं रह जाता।"

"तो फिर क्या बन जाता है ?" पूछा मैंनें।

'कुछ नहीं, वह भी सामान्य-सा हो जाता है। उसकी वह देवता वाली महिमा खत्म हो जाती है। सो ही अब चन्द्रमा की महिमा खत्म हो गई और उसके साथ ही वेदों की महिमा भी खत्म हो गई जिन्होंने उसे देवता कहा है और भगवान् की तो कम हो ही गई—" गर्दन अकड़ा कर बोले, जैसे मानो इतना सब कहकर उन्होंने आर्मस्ट्रांग के समान वेदों पर अपने चरण रख दिए हों।

'भाई साहब, आपकी देवता की परिभाषा बड़ी विचित्र है। यह किसने कहा आपसे कि देवता चन्द्रमा को इसलिए कहते हैं कि उसके रहस्यों का पता नहीं है। क्या आपको अपनी माता और अपने पिता के बारे में जानकारी है ?"

'जी, क्यों नहीं होगी? उन्होंने तो जन्म ही दिया है और पाला-पोसा है, बड़ा किया है, वर्षों रहे हैं उनकी छाया में तो उनके बारे में जानकारी क्यों नहीं होगी ?"

"तो बताए, कि वे देवता हैं या राक्षस ?" मैंने सीधी चोट मारी। वे तिलमिला से गए। बोले—"क्या मतलब आपका ?" मैंने कहा—"महाराज, आपके कहने के अनुसार जिसके बारे में जानकारी हो जाए वह देवता नहीं रह जाता, तो अब जब आप को अपने माता-पिता के बारे में चन्द्रमा से भी अधिक जानकारी प्राप्त है तो वे देवता रहे कि नहीं ?"

"वे तो कभी देवता नहीं थे ।"

"वाह, भाई साहब, आपकी अपने माता-पिता के प्रति कितनी सुन्दर भावना है ? क्यों न हो । हो सकता है, आपकी दृष्टि में आपके माता-पिता आपके लिए देवता न हों, पर वेद और उपनिषद् तो अब भी—

मातृ देवो भव

"**पितृ देवो भव**" कहकर उन्हें देवता घोषित करते हैं ।"

"अच्छा जी ? आपके वेद माता-पिता को भी देवता कहते हैं ?"

'जी हां, पर अब आप बताइए कि क्या आपको उन से डर लगता है कि पता नहीं वे आप के साथ क्या कर बैठें ?"

"जी, मैं क्यों डरूंगा अपने माता पिता से ? वे कोई जानवर थोड़े ही हैं ?"

"तो भाई साहब, देवता की आपकी दूसरी परिभाषा भी गलत हो गई कि देवताओं को देवता इसलिए माना जाना है कि उनसे भय लगता है । और इसीलिए उनकी प्रार्थना करते हैं । उनकी एक बात और बता दो, आपको सबसे ज्यादा डर किस जानवर से लगता है ?"

"शेर से ।"

"तो तो फिर आप रोजाना सुबह शाम अपने घर में "शेर" की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ते होंगे कि और किसी को खाना हो तो खा लेना मुझे मत खाइयो रोज तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ।"

.... ।

"क्यों ? चुप क्यों रह गए ? उत्तर दीजिए न ? भाई साहब, अब आपकी तीसरी बात भी गलत हो गई कि प्रार्थना का मूल कारण भय है । महाराज ! ये गलत बातें आपके दिल में बैठाई हैं वेदों के और भारतीय संस्कृति के दुश्मनों ने । इन अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय देवतावाद, भारतीय प्रार्थना और वेद तथा भगवान् का मज़ाक बनाया है । अब इन वेदों का मज़ाक हमारे ही आर्य उड़ा रहे हैं । न जाने किस से ऋग्वेद के मन्त्रों का हिन्दी में अनुवाद करा लिया और कहते फिरते हैं कि हमारे वेदों में कुछ नहीं रखा । जो कुछ वेदों में लिखा है इसका पता आपको हमारे हिन्दी अनुवाद से पता चल जाएगा । एक तो पाश्चात्य वैज्ञानिक हैं जो आँखें खोलकर विश्व के एक-एक अंग को सही रूप में पहचान और जान लेना चाहते हैं और एक ये हमारे ही भाई हैं जो अपने को बहुत प्रगतिशील और सुधारक बताते हैं और बजाए इसके कि वे आँखें खोल कर अपने इस महान् ग्रन्थ की बातों के संबंध में अनुसन्धान और खोज कार्य करें, और आँखें बन्द कर लेते हैं । अब आप ही देखिए, अंग्रेज़ी चश्मे से वेदों के बारे में आपने पढ़ा हुआ है तो आपको इन देवताओं के ही संबंध में कितनी गलत जानकारी है ।"

इतना कुछ सुनकर ही वे "अच्छा जी," कहकर विदा ले गए ।

पर सोचने की बात यह है कि क्या वेद के मन्त्रों का अपना कुछ शाश्वत मूल्य नहीं है ? क्या वेदों में चन्द्रमा को जो देवता शब्द से लिखा है वह गलत है ? कोई भी आर्य जिसने इनके संबंध में महर्षि के विचारों को पूर्ण रूप में हृदयङ्गम किया हुआ है, इन बातों को नहीं मानेगा । वेदों ने केवल चन्द्रमा को ही नहीं, पृथिवी को भी देवता बतलाया है, जल और अग्नि को भी देवता बतलाया है । और आज क्या मानव को इनके संबंध में

चन्द्रमा से भी अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है ? क्या ये तीनों तत्त्व मानव-जीवन के अंग नहीं बन गए हैं ? इतनी निकटता हो जाने के बाद भी क्या इनके देवतात्व में कोई फर्क आया है ? क्या अब विद्वानों ने इनको देवता कहना बन्द कर दिया है ?

बात यह है कि इन पाश्चात्य चरण चिह्नों पर चलने वाले तथाकथित विद्वानों का दृष्टिकोण ही सीमित है। वेदों ने पृथिवी आदि को देवता इसलिए कहा है कि वे दिव्य शक्तियों वाले हैं, इनमें एक नियमितता है, अनुशासन है, ये दिव्य शक्ति के सीधे नियन्त्रण में काम कर रहे हैं और इसलिए इनकी गति तथा इनका व्यवहार आदि सब कुछ नियमित है। इनके निश्चित गुण हैं, निश्चित धर्म हैं। इसीलिए उपनिषदों ने भी इनको "जन्मना देवता" कहकर मनुष्य "कर्मणा देवता" बतलाया है। जन्म से ही ये सब पृथिवी चन्द्र आदि देवता हैं। इनका देवतात्व स्वाभाविक, सहज, अविनश्वर और नित्य है। कारण ? ये जड़ हैं। चेतन नहीं हैं। इनके पास अपनी बुद्धि नहीं है और सीधे उस परमचैतन्य, परम-आत्मा परम-ज्ञान के नियन्त्रण में चल रहे हैं जिससे कभी कोई भूल हो ही नहीं सकती क्योंकि वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् है। और मनुष्य की अपनी बुद्धि है। वह अपने ही मातापिता तथा मित्र के, जो उसका हित चाहने वाले हैं, तथा प्रत्यक्ष हैं, नियन्त्रण को नहीं मानता, उस परमात्मा के नियन्त्रण को तो क्या मानेगा जो सर्वथा अदृश्य है ? जिसकी आवाज़ वह सुन नहीं सकता और जानता है कि मेरे कुछ भी करने पर उसे क्या पता चलेगा, वह देख थोड़े ही रहा है।" इसीलिए उपनिषदों ने कहा कि भौतिक तत्त्वों के गुण धर्म अर्जित नहीं हैं, स्वाभाविक हैं इसलिए उनमें अनियमितता नहीं दिखाई देती। मनुष्य के लिए देवतात्व अर्जनीय है। उसे प्राप्त करना है। वह प्राप्त होता है अपने कर्म से।

जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उसको वेद कहते हैं।

—महर्षि दयानन्द

वेद भगवान् की शाश्वत वाणी है। नित्य और सत्य है। इसके मन्त्रों का अनुवाद कभी नहीं हो सकता। व्याख्यान और विवेचन अवश्य हो सकता है। "अग्नि" शब्द का अर्थ "अग्नि" लिख देने मात्र से वेदों का अर्थ स्पष्ट नहीं हो जाता। वेद मन्त्र तत्त्व बीज हैं। इनमें बाइबिल या कुरान का-सा कथानक नहीं है। कथानकों और आख्यानों का तो अनुवाद हो सकता है पर "तत्त्व बीजों" का कभी भी अनुवाद नहीं हो सकता। किस बीज में क्या शक्ति है इसका पता उससे सहस्रों और हज़ारों गुना विस्तृत वृक्ष के द्वारा ही पता चलता है। वृक्ष बीज का व्याख्यान रूप है। इसी प्रकार का विस्तृत व्याख्यान जब एक-एक मन्त्र का होगा जब मनुष्य श्रम की नानाविध शक्तियों का अनुसन्धान करेगा तब उसे वेदों की महत्ता का पता चलेगा। ●

काश्मीर कैसे मुसलमान बना ?

श्री वैद्य मूलचन्द आर्य

यह बात निर्विवाद है कि आज जिस काश्मीर में ९० प्रतिशत मुसलमान हैं वह काश्मीर पहले पंडितों का प्रदेश था। यहां के पंडित नाम मात्र के पंडित नहीं थे अपितु जगत् प्रसिद्ध उच्चकोटि के विद्वान् भी थे व्याकरण महाभाष्य के कर्त्ता पतंजलि मुनि, राजतरंगणी रचयिता महाकवि कल्हण तथा कथासरित्सागर के लेखक सोमदेव भट्ट आदि सहस्रों विद्वान् इसी काश्मीर के उज्ज-वल रत्न थे। मर्हाष कश्यप तो काश्मीर के निर्माता ही थे। परन्तु आश्चर्य की बात है कि ऐसे प्रकाण्ड पण्डितों का वह पवित्र देश जिसे स्वर्ग से भी बढ़कर उपमा दी जाती रही है एकदम कैसे मुसलमान हो गया। काश्मीरी पंडितों ने इसलाम को उत्तम समझकर स्वीकार किया हो यह बात नहीं थी परन्तु जिस कारण काश्मी-रियों ने इसलाम स्वीकार किया वो प्रसिद्ध लेखक श्री पं० सन्तराम जी बी० ए० के निम्न शब्दों में पढ़िये:—

कोई नौ सौ वर्ष पहले सारा काश-मीर हिन्दु था परन्तु एक हिन्दु पंडित की भूल के कारण उसे मुसलमान बनना पड़ा। आप पूछोगे वह कैसे! सुनिए।

सिकन्दर नाम के एक सिंदियन राजा ने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। यह शक जाति का राजा न हिन्दु था न मुसलमान परन्तु उसका झुकाव हिन्दु धर्म की ओर था। कहते हैं वह एक पंडित से रोज गीता की कथा सुना करता था। एक दिन कथा में अग्र लिखित श्लोक आया:—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः
परधर्मास्विनुष्ठितात्।
परधर्मो भयावहः।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः

कथावाचक पंडित ने इसका अर्थ करते हुए कहा—दूसरों के उत्तम धर्म से अपना गुणहीन धर्म भी कल्याण देने वाला है। अपने धर्म में ही मरना अच्छा है और दूसरे का धर्म भयंकर है।

सिकन्दर चौंक पड़ा उसने पंडित से श्लोक का अर्थ दुबारा करने को कहा। पंडित ने फिर वही शब्द दुहरा दिये। तब सिकन्दर ने पूछा क्या इसका आशय यह है कि मैं आपके धर्म को ग्रहण नहीं कर सकता। पंडित ने उत्तर दिया जी हां, अपने २ धर्म में रहना ही अच्छा है क्योंकि भगवान ने कहा है—

स्वे स्वेकर्मण्यभिरतः
संसिद्धलंभते नरः।

यह सुनते ही सिकन्दर की विचार-धारा एकदम बदल गई। वह हिन्दु धर्म से निपट निराश हो गया। विवश होकर उसने निश्चय किया कि सबेरे जो व्यक्ति मुझे सबसे पहले दृष्टिगोचर होगा मैं उसी का धर्म ग्रहण करूंगा। दूसरे दिन सबेरे उठकर वह अपने राजभवन के झरोखे में बैठ गया। अकस्मात् उसकी दृष्टि सबसे पहले एक वृद्ध पर पड़ी। वह हाथ में मिट्टी का लोटा लिए जा रहा था। उसने बूढ़े को अपने पास बुलाया और पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है" "बुलबुलशाह"

"तुम कौन हो"

"मुसलमान।"

"क्या तुम मुझे अपने धर्म की दीक्षा दे सकते हो!

"मेरे लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है की काश्मीर नरेश मेरा धर्म भाई बने। इसलाम का द्वार मनुष्य मात्र के लिए खुला है।

बस फिर क्या था ? सिकन्दर मुसलमान बन गया। सबसे पहला काम उसने यह किया की काश्मीरी पंडितों को बोरियों में बन्द करके जेहलम नदी में डुबा दिया। उसके उद्योग से सारा काश्मीर अल्पकाल में ही मुसलमान हो गया। बुलबुलशाह की कब्र अब तक श्रीनगर में मौजूद है। जहां ये पंडित डुबोये गए थे उस स्थान को 'बट मजार' कहते हैं।

महाराज रणवीरसिंह जी ने काश्मीरी पंडितों से कहा था कि इन मुसलमान भाइयों को शुद्ध करके अपने में मिला लो। उन्होंने रणवीर प्रायश्चित्त नाम की एक पुस्तक भी तैयार कराई थी परन्तु पण्डितों ने महाराज की बात न मानी।

इस घटना से सिद्ध हो गया कि एक पण्डित की भूल से स्वर्ग रूपी काश्मीर इसलाम की गोद में चला गया। यदि यह भूल न होती तो आज अपने राष्ट्र का कोई दूसरा ही नक्शा होता। आर्यो ! अब भी चेतो और इन गलतियों से शिक्षा ग्रहण करो। अपने राष्ट्र को बलवान् और समृद्धिशाली बनाने के लिए जहां हमारे अनेक कर्तव्य हैं वहां इस प्रकार की भूलों से बचना भी हमारा मुख्य कर्तव्य है।

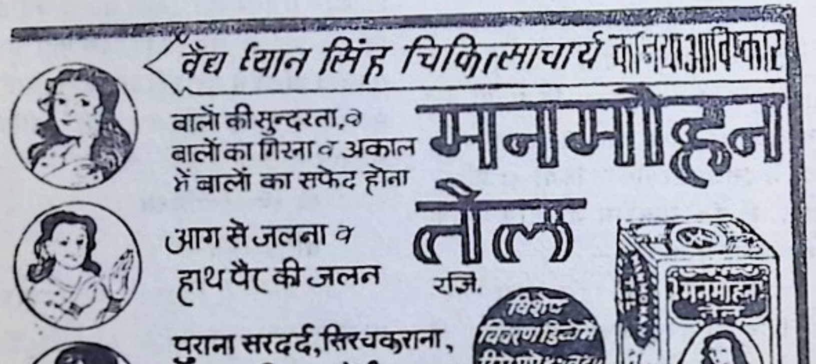

अध्यक्ष वैद्य ध्यानसिंह आर्य–

महर्षि दयानन्द की वाणी से

महर्षि दयानन्द के आदेशों पर चलना प्रत्येक आर्य का प्रथम कर्तव्य है

आचार्य, भद्रसेन अजमेर

(१) हम प्रभु भक्ति क्यों करें ?

प्रायः कई लोग यह कहा करते हैं कि हम ईश्वर भक्ति क्यों करें। क्योंकि जब ईश्वर ने हर हालत में हमारे कार्यों का फल हमें अवश्य देना ही है तो ईश्वर भक्ति से लाभ ही क्या ? इत्यादि। प्रिय पाठक इस सम्बन्ध में ऋषि के हार्दिक उद्गारों को पढ़ें—

(१) हमारे माता-पिता ईश्वर के ही बनाए पदार्थों को लेकर हमारा पालन पोषण करते हैं। तो भी तो हम पर बड़ा उपकार करते हैं, और उन उपकारों को स्मरण कर उनके प्रति कृतज्ञ होना यह हमारा धर्म है। ऐसा हम स्वीकार करते हैं। फिर जब ईश्वर ने हमारे ही लिये सृष्टि उत्पन्न की तो उस प्रभु के असंख्य उपकारों को हमें कभी न भूलना चाहिए। (अर्थात् उसके गुणानुवाद द्वारा सदैव प्रभु को कृतज्ञ होना चाहिए)

(२) कृतज्ञता दिखलाने वालों का मन स्वतः ही प्रसन्न और शान्त वना रहता है (अर्थात् मन जब प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है तो उनका स्वभाव सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का हो जाता है उसका यदि कोई थोड़ा-सा भी उपकार करता है तो वह उसका बार-बार धन्यवाद करता है। अतः ऐसे कृतज्ञ मनुष्य का संसार में कोई शत्रु ही नहीं रहता। इसलिए वह मनुष्य सदा निर्भय होकर संसार में विचरण करता है)

(३) परमात्मा की शरण जाने से आत्मा निर्मल हो जाता है।

(४) प्रार्थना करने से मनुष्य को अपने पापों के प्रति पश्चाताप होता है तथा पश्चाताप से आगे को पाप वासनाका वल घटता जाता है।

(५) सत्य और प्रेम दृढ़ होते जाते हैं। अर्थात् वह प्राणिमात्र के प्रति सत्य और प्रेम का ही व्यवहार करता है।

(६) ईश्वर स्तुति करने से ईश्वर में अपनी दिनों दिन प्रीति बढ़ती जाती है। ज्यों-ज्यों प्रभु के गुण हमारी समझ में आते जाते हैं, त्यों-त्यों प्रीति और अधिक बढ़ती जाती है।

(७) उपासना के द्वारा आत्मा में सुख और शान्ति का प्रादुर्भाव होता है।

(८) उपासना से विवेक उत्पन्न

होता है। और विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं में शोक और मोह यह दोनों नहीं रहते।

प्रिय पाठक ऋषि के दर्शाए प्रभु भक्ति के उपर्युक्त आठों लाभों पर विचार करें, और अपने को प्रभु भक्त बना सुख और शान्ति के भागी बनें।

(२) योगी और भोगी अर्थात् संसारी मनुष्यों में अन्तर

उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं। तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष, शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर सदा उत्साह और आनन्द युक्त ही बनी रहती है और संसारी पुरुष की वृत्ति सदा हर्ष, शोक रूप दुःखसागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की वृत्ति तो सदा ज्ञान के प्रकाश में बढ़ती ही जाती है, और संसारी पुरुष की वृत्ति सदा अन्धकार में ही डूबी रहती है।" उपदेश मंजरी

योगी और भोगी का कितना सुन्दर विवेचन है।

(३) भारत की उन्नति का उपाय

एक धर्म, एक भाषा और लक्ष्य की प्राप्ति ही भारत की पूर्णोन्नति में साधक है। कड़े तथा खरे उपदेशों से जाति को जगाकर कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट करना ही मेरे खण्डन का एक मात्र उद्देश्य है। इसीलिए में जाति के हित के लिए अनेक प्रकार के कष्ट, गालियां और विष पान आदि तक को भी सहन कर लेता हूं। उ. मं.

ऋषि के अन्दर अपने देश तथा जाति के उत्थान की कितनी तड़प थी इसके लिए वे अनेक घोर विषपान अपमान तक भी सहन कर लेते थे।

(४) भारतीय रोग की औषध

इस भारत खण्ड से वेदों का बहुत-सा धर्म लुप्त हो गया है। और रहा सहा हम लोगों के प्रमाद से नष्ट होता जा रहा है तथा उसकी जगह पाखण्ड, अनाचार और दम्भ बढ़ता जा रहा है। सनातन आर्य ग्रन्थ वेदादि को छोड़ कर लोग पुराण आदि अनार्य ग्रन्थों में लिपट रहे हैं। और उन की कालिक तथा असभ्य गाथाओं को ही अपना धर्म समझ बैठे हैं। यदि मुझ से कोई पूछे कि इस पागलपन का कोई उपाय भी है या नहीं। तो मेरा उत्तर यह है कि यथार्थ रोग बहुत बढ़ा हुआ है। तथापि इसका उपाय हो सकता है। यदि परमात्मा की कृपा हुई तो रोग असाध्य नहीं है। वेद और दर्शनों जैसी प्राचीन पुस्तकों के भिन्न-भिन्न भाषाओं में अनुवाद करके, सब लोगों को जिससे अनायास प्राचीन विद्याओं का ज्ञान हो सके, ऐसा यत्न करना चाहिए। पढ़े-लिखे विद्वान् लोगों को सच्चे धर्म के उपदेश देने की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए। गांव-गांव में आर्य समाज स्थापन करके, तथा मूर्तिपूजा आदि अनाचरणों को दूर करके, एवं ब्रह्मचर्य के द्वारा जप अर्थात् प्रभुभक्ति की सामर्थ्य को बढ़ाकर सब वर्णों और आश्रम के लोगों को अपने शारीरिक और अमर्त्यक बल को बढ़ाना चाहिए। तब ऐसा यत्न करने पर सुगमता से शीघ्र ही लोगों की आंखें खुल जायेंगी। और यह दुर्दशा दूर होकर अवश्य सुदशा की प्राप्ति

होगी।   उ. मं०

प्रिय पाठक देखें, उस दूर द्रष्टा ऋषि ने भारतीय महारोग की कैसी अमोघ औषध हमारे सम्मुख उपस्थित की है।

(५) 'शोक ! हम तो अपने नाम तक को भी भूल बैठे'

हमारे देश का नाम तो 'आर्य स्थान' या 'आर्य खण्ड' होना चाहिए। सो उसे छोड़ न जाने 'हिन्दुस्तान' यह नाम कहां से निकल आया। भाई श्रोतागण ! हिन्दू शब्द का अर्थ तो काला, काफिर और चोर आदि होता है। अतः अपने देश को हिन्दुस्तान कहने से काले, काफिर और चोरों का स्थान अथवा देश ऐसा अर्थ होता है। तो भाई ! इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो। और 'आर्य' अर्थात् श्रेष्ठ, आर्यज्ञात और 'आवर्त' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का देश ऐसा अर्थ होता है। सो भाई ऐसे श्रेष्ठ नाम को तुम क्यों नहीं स्वीकार करते। क्या तुम अपना मूल का नाम तक भी भूल गये। हम लोगों की यह दुर्दशा देखकर किसके हृदय में क्लेश न होगा। अन्य सज्जन जनः अब 'हिन्दू' इस नाम का त्याग करो, और और 'आर्य' तथा 'आर्यवर्त' इन नामों का अभियान करो। गुण भ्रष्ट तो हम लोग हुए ही पर नाम भ्रष्ट तो हमें नहीं होना चाहिए। यही आप लोगों से मेरी प्रार्थना है।   —उ. मं.

जो आर्यविद्वान् अपने को ऋषि का अनुयायी कहते हुए भी अपने लेखों तथा व्याख्यानों में 'हिन्दू' शब्द का समर्थन करते हैं। वह ऋषि के उपर्युक्त वाक्यों को ध्यान से पढ़ें और अपने मन में विचार करें कि हम हिन्दू शब्द का समर्थन कर ऋषि की आत्मा के साथ धोखा तो नहीं कर रहे। तथा उनके आत्मा को दुःखी तो नहीं बना रहे।

हमने ऋषि के पूना के व्याख्यानों में से कुछ थोड़े से उपदेश प्रियपाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया है। ऋषि के वाक्य ही हमारे नेता हैं। उन पर चल-कर ही देश धर्म, वेद और आर्य समाज बच सकता है। ●

ठाकुर गोपालसिंह ने बुलन्दशहर में महर्षि दयानन्द से पूछा आप पर शीत का कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता! उन्होंने कहा कि ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण हैं। ठाकुर महाशय कहने लगे—'हम कैसे जानें?" तब महाराज ने अपने हाथों के अंगूठे दोनों घुटनों पर रख कर दबाये तो तत्काल सारे शरीर से पसीना चू निकला। लोग देख कर चकित रह गये, क्योंकि उस समय अत्यन्त जाड़ा पड़ रहा था—लोग गरम कपड़ों में भी कांप रहे थे, किन्तु महाराज नग्न बैठे शरीर से पसीना बहा रहे थे। तब लोगों को महाराज के योग-बल में पूरा विश्वास हो गया। ●

राजेन्द्र सिंह

क्या आदिमानव मूर्ख व असभ्य था ?

वर्तमान युग का सब से बड़ा अभिशाप है विकासवाद का अवैज्ञानिक सिद्धान्त। विज्ञान के नाम पर इसका पोषण तो अत्यन्त हास्यास्पद है प्रस्तुत लेख में इसी विकासवाद की कतिपय मान्यताओं का युक्तियुक्त विश्लेषण विद्वान् लेखक ने किया है— संपादक

वर्तमान ढंग की शिक्षा प्राप्त अधिकांश व्यक्तियों में यह भ्रान्त धारणा घर कर गई है कि आदि मानव मूर्ख, असभ्य, अन्धविश्वासी आदि था। यह सब डारविन के विकासवाद के कारण हुआ है जिसमें उक्त वातों को विस्तार से बताया गया है। विज्ञान का छात्र होने से लेखक ने भी विकासवाद को पढ़ा है और पढ़-समझ कर इस परिणाम पर पहुँचा है कि विकासवाद का सिद्धान्त अवैज्ञानिक है।

विकासवाद के मुख्यतया दो भाग हैं। प्रथम भाग में कहा गया है कि—

'प्राकृतिक पदार्थों का आदि व मूल कारण ईथर है। उसी से विद्युत, गर्मी, शब्द व प्रकाश उत्पन्न होते हैं। इसी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों को इलेक्ट्रोन कहते हैं। इन इलेक्ट्रोनों के संघात से विद्युत व शक्ति के रूप बने। शक्ति का स्थूल रूप ही प्रकृति अर्थात् मैटर है। प्रकृति वायु, तरल व ठोस तीन अवस्थाओं में होती है। ईथर से उत्पन्न ये पदार्थ घनीभूत होकर और आकर्षणानुकर्षण के नियम से चक्राकार गति में हो जाते हैं। कुछ समय पश्चात् वही चक्र सूर्य बन जाता है। सूर्य में गर्मी और तेजी के कारण चक्कर पड़ जाते हैं। पश्चात् वे चक्कर पृथक् होकर ग्रह बन जाते हैं जिनसे दूसरे उपग्रह बन जाते हैं। इन्हीं ग्रहों में से हमारी पृथ्वी भी एक ग्रह है। पहले यह बहुत गर्म थी। धीरे-धीरे ठण्डी हुई। फिर समुद्र बने, उनसे भूमि निकली और जीवन आरम्भ हुआ। पृथ्वी से चेतन शक्ति उत्पन्न हुई। चेतन शक्ति धीरे-धीरे बढ़ी। उससे पूर्व न जन्तु थे और न ही वनस्पति। इसी चेतन शक्ति की एक शाखा एक कोष्ठधारी प्राणि 'अमीबा' बन गई। ये अमीबा इतने बढ़े कि उन्हें खाने-पीने की कठिनाई होने लगी जिस कारण वे नाना प्रकार के प्रयत्न करने लगे। इससे उनमें जीवन संग्राम छिड़ गया। उनमें, जो शारीरिक बल व मानसिक अभ्यास में बलवान् थे बच गए, शेष मारे गए। बचे हुए अमीबा कुछ भिन्न प्रकार के थे। वे पुनः बढ़े और उनमें भी खाने-पीने की कठिनाई होने लगी। इस

प्रकार पुनः संग्राम हुआ और इस संग्राम में योग्य बच गए और अयोग्य मारे गाए। बचे हुए अमीबा पहले वालों से कुछ भिन्न प्रकार के होते थे। इनमें भी वही क्रम चलता रहा और बहुत काल बीतने पर मरते बचते तथा परिस्थिति के अनुसार आकार-प्रकार बदलते-बदलते मछली, मेंढक, सांप, पक्षी, गाय, बैल, बन्दर, वन-मानुष और मानव की इनसे उत्पत्ति हुई। इन सब घटनाओं के लिए किसी परमात्मा को मानने की आवश्यकता नहीं।'

विकासवाद के इस प्रथम भाग को सर्वथा वैज्ञानिक कहा जाता है। परन्तु है यह सर्वथा अवैज्ञानिक। वैज्ञानिक कहना 'विज्ञान' शब्द की वैज्ञानिकता को नष्ट करना है। इस भाग की अवैज्ञानिकता निम्न प्रमाणों से सिद्ध होती है—

यह निर्विवाद और विज्ञान का सिद्धान्त है कि कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं गतिशील नहीं हो सकता है और न ही बन सकता है। उदाहरण के रूप में मोटर, को जब तक चलाया अथवा बनाया नहीं जाता, तब तक न वह चल सकती है और न ही बन सकती है। इसको बनाने वाली शक्ति चेतन है। अतः जड़ और चेतन दो भिन्न शक्तियां हैं। चेतन को आत्मा भी कहा जाता है। यह मरती नहीं है। वैज्ञानिकों ने भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान लिया है। अतः यह अनादि है और ये आत्माएं अनेक हैं। किसी भी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं होता, प्रत्युत उसका रूप परिवर्तित हो जाता है। ये पृथ्वी आदि सभी वस्तुएं प्रकृति का स्थूल रूप हैं। इस प्रकार प्रकृति किसी न किसी अवस्था में सदा विद्यमान रहती है। अतः प्रकृति अनादि है। यह भी विज्ञान का नियम है कि जड़ वस्तु को चेतन ही नियम में बांधता है। जैसे घड़ी में नियम मनुष्य ने बांधा है जिससे वह समय बताती है। परन्तु यह दोनों भी एक नियम में बन्धे हैं। जैसे चेतन अर्थात् 'आत्मा' का देह में प्रवेश होना, अपना कर्मफल भोगना और निकलकर पुनः किसी दूसरे शरीर में प्रवेश होना। अतः स्पष्ट है कि इन दोनों को नियम में बांधने वाला अवश्य ही कोई तीसरा है और वह भी चेतन ही है। इसी को वैज्ञानिक 'महान् शक्ति' तथा साधारण मनुष्य 'परमात्मा' कहता है।

इस प्रकार विशुद्ध विज्ञान द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि तीन शक्तियां प्रकृति, आत्मा, और परमात्मा अनादि हैं। इनमें परमात्मा दोनों को नियम में बांधने से अति श्रेष्ठ, 'आत्मा' प्रकृति को वश में कर लेने से मध्यम और प्रकृति दोनों के वश में जाने से साधारण है। इन्हीं से यह संसार चलायमान है।

विकासवाद के अनुसार ईथर से उत्पन्न पदार्थों में गति उत्पन्न हुई। यहां गति उत्पन्न करने वाला कौन था? इसका उत्तर विकासवाद के पास नहीं है जबकि इस प्रश्न का उत्तर अत्यावश्यक था, क्योंकि जड़ पदार्थ में स्वयं गति नहीं हो सकती।

समुद्र से भूमि निकलने के पश्चात् जीवनारम्भ हुआ। चेतन-शक्ति को विकासवाद प्रोटोप्लाज्म कहता है जो कि इसके अनुसार १६ रसायनिक तत्वों से बना है अर्थात् जड़ से बना है क्योंकि ये रसायनिक तत्त्व (वायु जल आदि) जड़ होते हैं। इस प्रकार विकासवाद जड़ से चेतन की उत्पत्ति मानता है। परन्तु जड़ से चेतन की उत्पत्ति असम्भव है। यदि जड़ से चेतन की उत्पत्ति होने लग जाए

तो घर, कुर्सी, मेज, सभी कुछ चलने फिरने लग जाएं और इस प्रकार समस्त संसार में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाए। अतः जड़ से चेतन की उत्पत्ति असम्भव है।

'दि नेचर एण्ड ऑरिजिन ऑफ लाइफ' नामक ग्रन्थ के पृष्ट १७३ पर एक विज्ञ विद्वान वैज्ञानिक सत्य लिखता है कि 'चेतन के प्रभाव के बिना जड़ पदार्थों में चेतना आ ही नहीं सकती। विज्ञान का यह नियम मुझे पृथ्वी के आकर्षण के नियम की भान्ति अटल प्रतीत होता है।'

अतः विकासवाद का यह कथन 'कि चेतन पदार्थ रसायनिक तत्वों के संयोग से बना है' सर्वथा अशुद्ध है।

अमीबा से पूर्व वनस्पति व जन्तुओं को विकासवाद नहीं मानता और उसका कहना है कि अमीबाओं को खाने-पीने की कठिनाई हुई। जब वनस्पति ही नहीं थी तो अमीबा खाता क्या था? अमीबा से पूर्व वनस्पति का न होना अयुक्तिसंगत है।

जब संग्राम होता है तो उसमें बलवान् व दुर्बल दोनों ही मारे जाते हैं, केवल दुर्बल ही नहीं। अतः केवल बलवान् ही बचे, यह मान्यता भी ठीक नहीं है।

विकासवाद के अनुसार बचे हुए अमीबा कुछ भिन्न प्रकार के होते थे। प्रश्न है कि विकासवाद को यह कैसे विदित हुआ? मरे हुए अमीबा का जब अस्तित्व ही नहीं रहा तब यह नहीं कहा जा सकता कि बचे हुए भिन्न प्रकार के थे क्योंकि ऐसी मान्यता के लिए दोनों प्रकारों का विद्यमान रहना आवश्यक है, तभी उनमें तुलना की जा सकती है। और फिर उस समय, जब संग्राम हुआ, उन्हें देखा किसने? उस समय मनुष्य का अस्तित्व तो था ही नहीं।

क्या हम मूर्ख बन जाएं ?

अगर एक आदमी मूर्ख हो, तो उसे देखकर क्या हम भी मूर्ख बन जायें? नहीं, ठीक भी है कि मूर्ख को देख कर हम भी मूर्ख बनजाएं तो हम में क्या फर्क रहा? वह भी मूर्ख, हम भी मूर्ख, दोनों बराबर!

कोई हमें गाली देता है, तो वह क्या चाहता है? वह यही चाहता है कि हमें गुस्सा आ जाये, और हम लड़ने को तैयार हो जायें, अब यदि हमें गुस्सा आ जाता है, तो कौन जीता, कौन हारा? साफ बात है कि वह गाली देने वाला जीता, क्योंकि जो वह चाहता था, वही हमने किया, हम गुस्सा न करें तो वह हार जायेगा, क्योंकि जो वह चाहता है, हम नहीं करते.

इसी प्रकार उक्त सभी धारणाओं की भान्ति विकासवाद की यह धारणा कि अमीबा से ही सभी प्राणि विकसित होकर वर्तमान रूप में आए हैं,' भी अत्यन्त भ्रान्त है।

घोड़े से घोड़ा, कबूतर से कबूतर, मनुष्य से मनुष्य इसी प्रकार एक जाति से उसी जाति का प्राणी उत्पन्न होता है। अतः जिस प्रकार घोड़े की जाति से मनुष्य जाति अथवा अन्य कोई जाति उत्पन्न नहीं हो सकती, उसी प्रकार अमीबा से भी सभी प्राणि उत्पन्न नहीं हो सकते। अमीबा एक कोष्ठीय प्राणी है। उससे अनेक कोष्ठीय प्राणि किस प्रकार उत्पन्न हुए? एक कोष्ठीय में नर कौन है और मादा कौन? पहले नर हुआ अथवा मादा? इन प्रश्नों

का उत्तर विकासवाद के पास नहीं है। अमीबा को सरल प्राणी कहा जाता है। यह अपने में छेद करके भी जीवित रहता है। अति सूक्ष्म होते हुए भी इसमें आठों संस्थान पाए जाते हैं। फिर भी न जाने क्यों इसको सरल कहा जाता है? अपने अन्दर छेद करके भी जीवित रहना सरलता नहीं है, अपितु यह जटिलता है। फिर उसे किस आधार पर सरल कहा जाता है जबकि वह अपना भोजन चुनने की भी योग्यता रखता है।

यदि एक जाति से दूसरी जाति का विकसित होना सम्भव हो जाए तो समस्त संसार में जड़ से चेतन की उत्पत्ति वाली मान्यता की भान्ति अव्यवस्था उत्पन्न हो जाए। तब मनुष्य यह विश्वास ही नहीं कर सकता कि उसके मनुष्य का बच्चा ही उत्पन्न होगा, गधे, घोड़े आदि का बच्चा नहीं अतः एक जाति से दूसरी जाति की उत्पत्ति मानना अयुक्तिसंगत एवं विज्ञान विरुद्ध होने से असम्भव है। और फिर जिस परमात्मा ने इतने बड़े-बड़े ग्रह उत्पन्न किए हैं क्या वह सभी प्राणियों को पृथक्-पृथक् उत्पन्न नहीं कर सकता था? उसे क्या आवश्यकता पड़ी थी कि वह अमीबा से सभी प्राणियों को विकसित कराता?

इस प्रकार विकासवाद का प्रथम भाग अवैज्ञानिक होने से त्याग देने योग्य है। विकासवाद का यह कहना भी अज्ञानता है कि, 'इस सब के लिये किसी परमात्मा को मानने की आवश्यकता नहीं।

यदि बुद्धिपूर्वक सोचा जाए तो ईश्वर को मानने में ही वैज्ञानिकता है।

विकासवाद के द्वितीय मुख्य भाग में कहा गया है कि—

'अमीबा से विकसित होकर मानव वर्तमान अवस्था में आया है। यह वर्तमान अवस्था मानव के क्रमिक विकास का फल है। आदि मानव छोटी खोपड़ी, छोटे कद, तथा काले रंग का था। वह जंगलों में रहता था। वह कन्दमूल व जन्तुओं का कच्चा मांस खाकर अपना पेट भरता था। उसमें सामाजिक भावना का विकास नहीं हुआ था: वह अपने विचारों को एक-दूसरे को ठीक प्रकार से बता नहीं सकता था। पहले वह बोलता नहीं था। पशु-पक्षियों की ध्वनियों से उसने बोलना सीखा। वह प्रारम्भ में टूटे-फूटे शब्दों में ही बोल सकता था। इस प्रकार अपने विचारों को किसी दूसरे को बताने में जब उसे कठिनाई होने लगी तो उसने भाषा का निर्माण कर लिया। वस्तुओं के नाम उसने प्राकृतिक व पशु-पक्षियों की ध्वनियों को सुनकर रखे। जैसे नदी 'सर-सर' करती है तो उसका नाम सरिता, कोयल 'कू-कू' करती है, उसका नाम कुक्कू, अथवा कोयल रखा, इसी प्रकार पशु-पक्षियों के नाम भी रखे गए। इस प्रकार भाषा का निर्माण होने के पश्चात् उसमें शनैः-शनैः

जो धर्म के गौरव को पूज्य मानकर शांत और मग्न होता है उसी को सच्चा शांत और नम्र समझना चाहिए। अपना मतलब साधने के लिए कौन शांत और नम्र नहीं बन जाता?

सामाजिक भावना का प्रादुर्भाव हुआ और फिर उसने घर बनाकर रहना प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार उसमें विकास होते-होते वह वर्तमान अवस्था में आए हैं। यह सब क्रमिक विकास का ही फल है।'

इस द्वितीय भाग की अप्रमाणिकता निम्न प्रकार से सिद्ध होती है—

अमीबा से विकसित होकर मानव का वर्तमान अवस्था में आना विकासवाद मानता है। प्रथम भाग में सिद्ध किया जा चुका है कि अमीबा से दूसरे प्राणि विकसित नहीं हो सकते। अमीबा में आदि सृष्टि से लेकर आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। डाक्टरअगासिज अपनी पुस्तक 'प्रिन्सीपल्स ऑफ जूलोजा' में लिखते हैं—

'पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले, बिना हड्डियों के जन्तुओं और मनुष्य आदि हड्डीदार जन्तुओं में एक ही समान उन्नति हो रही देखी जाती है। परन्तु इस समानता का यह अर्थ नहीं कि एक प्रकार के प्राणि दूसरे प्रकार के प्राणियों से विकसित हुए हैं। आदिम कालीन मत्स्य ही सर्पणशील प्राणियों के पूर्वज नहीं हैं और न ही मनुष्य अन्य स्तनधारियों से, जो टरशरी युग में थे, उत्पन्न हुआ है। भिन्न-भिन्न प्राणियों में सम्बन्ध एक उच्च अभौतिक तत्त्व (परमात्मा) के कारण है। उस (परमात्मा) का उद्देश्य इस सब कुछ परिवर्तन करने का, मनुष्य को यहां उत्पन्न करना था। मनुष्य वह अन्त है जिसकी ओर पूर्ण प्राणि जगत् चल रहा है।'

डाक्टर अगासिज के प्रमाण से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि अमीबा से समस्त प्राणि तो क्या, एक भी प्राणी विकसित नहीं हुआ।

विकासवाद के अनुसार आदि मानव

> खाने सोने डरने और मैथुन के बारे में मनुष्य और पशु परस्पर समान हैं, केवल धर्म ही मनुष्यों में विशेष है। यदि वह ही न रहा तो फिर मनुष्य सर्वथा पशु के समान ही है।
>
> —हितोपदेश
>
> कामना से, भय से, लोभ से अथवा प्राण रक्षा हित भी धर्म का परि त्याग न करे। धर्म ही नित्य है। सुखदुःख तो अनित्य है। —वेदव्यास

छोटी खोपड़ी, छोटे कद तथा काले रंग का था। यह भी विकासवाद की मिथ्या कल्पना है।

आज बड़ी खोपड़ी वाले पति-पत्नी के छोटी खोपड़ी वाली सन्तान होती देखी जाती है तथा लम्बे कद वाले पति-पत्नी के छोटे कद की सन्तान भी हो जाती है। जो कि ह्रास का लक्षण है। यदि उसमें विकास हुआ माना जाए तो क्यों नहीं आज १५-१५ फीट के मानव मिलते? विकासवाद ही कहता है कि पहले ८० मनकी छिपकली होती थी। न जाने क्यों आज वही छिपकली १½ छटांक की रह गई है। अतः स्पष्ट है कि आदि मानव छोटी खोपड़ी व छोटे कद का नहीं था अपितु जैसा आज है वैसा ही उस समय भी था।

आदि मानव को काले रंग का मानना भी भूल है। यह तो एक बच्चा भी जानता है कि सूर्य का प्रकाश सफेद रंग का होता है जो कि सात रंगों के मिश्रण से बनता है। जिस समय किसी स्थान पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता, उस समय उस स्थान पर अन्धेरा छा जाता है जो कि काला

होता है। अति स्पष्ट है कि रंगों का अभाव ही कालापन है। अभाव से भाव की उत्पत्ति असम्भव है। यदि काला कोई रंग ही न हो तो उससे रंग की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

नागालैण्ड, अण्डेमान, अमरीका के काले मानव आज तक सफेद रंग के नहीं हुए। काले मानव के घर में काली संतान ही होती देखी गई है, सफेद नहीं। यदि कहीं सफेद हुई भी है तो वह सफेद पुरुष वा स्त्री के संयोग से ही हुई है।

अतः आदि मानव काला नहीं था।

वनों में तो उसने रहना ही था। जब उस समय घर ही नहीं थे, सड़कें आदि नहीं थीं तो स्पष्ट है कि वन ही वन थे। तब यह कहना कि 'वह जंगलों में रहता था,' अत्यन्त हास्यास्पद है।

आदि मानव कन्दमूल अवश्य खाता था परन्तु विकासवाद का यह आक्षेप कि 'वह जानवरों का कच्चा मांस खाता था,' सर्वथा मिथ्या है।

'दि रिलीजन आफ दि सेमीहिस' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ३०३ पर स्पष्ट लिखा है कि—'यवन और यहूदी आदि लोग मानते थे कि सुवर्ण-युग में मनुष्य केवल शाकाहारी था।'

'तत्रैव' के पृष्ठ ६०१ पर भी लिखा है कि—

'आदि मानव सर्वथा निर्दोष था और सब पशुओं के साथ शान्ति का व्यवहार करता था। वह भूमि की स्वाभाविक उपज खाता था।'

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ज्ञान और भाषा का बहुत गहरा सम्बन्ध है। अभिप्राय यह है कि ज्ञान के बिना भाषा नहीं समझी जा सकती और भाषा के बिना ज्ञान नहीं आ सकता। इससे स्पष्ट है कि मानव को ज्ञान व भाषा दोनों साथ-साथ ही प्राप्त हुए। अतः भाषा और ज्ञान का भिन्न-भिन्न समय में माना जाना अयुक्तिसंगत है।

पशु-पक्षियों की ध्वनि सुनकर मानव भाषा का निर्माण नहीं कर सकता। मानव को जो भाषा सिखाई जाती है वही वह समझ और बोल सकता है। यदि किसी बालक को पशु-पक्षियों की ध्वनियां सुनाई जाएं, मानव की भाषा न सुनाई जाए तो वह मानव की भाषा नहीं बोल सकता। सिंह-मांद से जो बालिका प्राप्त हुई है वह मानव-भाषा नहीं बोल सकती। टार्जन की घटना भी ऐसी ही है। कोयल अपने बच्चों को कौवे से पलवाती है, परन्तु कोयल के बच्चों पर कौवे की ध्वनि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार सभी पशु-पक्षी एक दूसरे की ध्वनि नहीं बोल सकते। किन्तु एक मानव का बच्चा ही है जो सुनी हुई भाषा अथवा ध्वनि को बोल सकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यदि मनुष्य को पशु-पक्षियों की ध्वनि सुनाई जाए तो वह मानव की बोली नहीं बोल सकता। फिर विकासवाद का पशु-पक्षियों से भाषा का विकास होना कैसे माना जा सकता है ? अतः प्राकृतिक ध्वनियों से भाषा का निर्माण नहीं हो सकता और न ही ऐसा हुआ है।

यह भी निर्विवाद है कि मानव को बिना बताए 'भाषा' नहीं आ सकती। यदि ऐसा न हो तो शिक्षालय व विद्यालय आदि खोलने की आवश्यकता ही न हो। स्पष्ट है कि मानव को ज्ञान दिया गया है और इसके साथ ही भाषा भी दी गई है। इसके साथ ही यह ज्ञान और भाषा कोई

मनुष्य ही दे सकता है, पशु-पक्षी नहीं। प्रश्न है कि आदि मानव को ज्ञान और भाषा किसने दिए ? यदि मानव ने दिए तो उस मानव को किसने दिए ? यदि यह कहा जाए कि यह ज्ञान और भाषा बहुत काल के पश्चात् दिए गए तो भी उचित नहीं है क्योंकि बिना इनके मानव का व्यवहार ही नहीं चल सकता। अतः मानव को ज्ञान और भाषा आदि काल में ही दे दिए गए थे और यह ज्ञान और भाषा परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता। निश्चय ही परमात्मा ने मानव को मानव-उत्पत्ति के आरम्भ में ही ज्ञान और भाषा दे दिए थे। अतः भाषा के विषय में भाषा-शास्त्रियों का (विकासवाद के आधार पर भाषा का विकास मानने वाले भाषा-शास्त्रियों का) यह कहना कि 'भाषा मानव के क्रमिक विकास का फल है' सर्वथा अयुक्तिसंगत एवं अज्ञानतापूर्ण है।

उक्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है कि परमात्मा ने मानव को 'भाषा व ज्ञान' का ज्ञान दिया। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि वह आदि ज्ञान और भाषा कौनसे थे जिसको परमात्मा ने मानव को दिए और किस प्रकार दिए ? इसका उत्तर निम्न प्रकार से है।

जो ज्ञान परमात्मा ने मानव को आदि काल में दिया था वह भारत के प्राचीन तथा पवित्र ग्रन्थ 'वेदों' में संकलित है जिसको पाश्चात्य विद्वानों ने भाटों के गीत बताकर अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है। वेदों की भाषा ही आदि भाषा है। क्योंकि वेद किसी मानव के बनाए हुए नहीं हैं, इसलिए उनको अपौरुषेय कहा गया है।

परमात्मा द्वारा ज्ञान प्राप्त होने से आदि मानव अति श्रेष्ठ, नीतिमान्, अति सभ्य था।

यह सर्वसम्मत है कि एक सम्मोहिनी विद्या जाननेवाला व्यक्ति अर्थात् हिप्नाटिस्ट एक अनपढ़ मनुष्य के मुख से भी क्लिष्ट उच्चारण वाले शब्द उसपर अपनी विद्या का प्रभाव डालकर निकलवा सकता है। और यह भी निर्विवाद है कि जब हम कोई विचार करते हैं तो उन विचारों में आए शब्दों को अपने अन्तःकरण में उच्चारण हुआ अनुभव करते हैं।

परमात्मा हिप्नाटिस्टों का भी हिप्नाटिस्ट है। अतः शान्त रहते हुए भी वह सृष्टि के आदि में ऋषियों के हृदय में ज्ञान का प्रकाश कर देता है जिससे मनुष्य बोलना सीख जाता है। उन ऋषियों से समस्त ज्ञान दूसरे मनुष्यों को प्राप्त होता है और सृष्टि के प्रलय तक इसी प्रकार गुरु परम्परा से ज्ञान चलता रहता है।

अतः विकासवाद की यह धारणा कि 'बोलियों से भाषा बनी है' भी अन्य सभी धारणाओं की भान्ति मिथ्या है।

अतएव आदि मानव मूर्ख, असभ्य नहीं था, अपितु महा विद्वान, और सभ्य था।

आनन्द कहाँ ?

सेठ निर्भयराम एक दिन फर्रुखाबाद में महर्षि दयानन्द के पास आये तो महाराज ने पूछा—"सेठजी आनन्दित हो ?" सेठजी ने उत्तर दिया—"हाँ महाराज, आपकी दया से पुत्र-पौत्र, धन-धान्य सब कुछ हैं।" महाराज ने कहा कि धर्म-कर्म और आत्मा परमात्मा से भिन्न अन्य वस्तुओं में आनन्द समझना अविद्या का लक्षण है।

ब्रह्मदेश में आर्य समाज

चतुर्थ आर्य सम्मेलन माण्डले बर्मा में दिया गया व्याख्यान

श्री ब्रह्मदत्त जी बी० ए० बी० एल० मचीना द्वारा—

करीब ६४ वर्ष हुए कुछ विशेष उद्देश्यों को लेकर महर्षि स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना भारत में की। और बाद को जहां-जहां भारतमूलक आर्य जा कर बसे, वहां उन्होंने आर्यसमाजें स्थापित कीं। आर्य समाज का इतिहास साक्षी है कि इस अभियान में कितनी दिक्कतों का सामना हुआ। भाषा, अन्य मतों से टक्कर और न जाने कितनी और कठिनाइयों के होते हुए भी हिन्दी के माध्यम से आडम्बर रहित सरलता से बलिदानपूर्ण सच्ची सेवा से वैदिक साहित्य के आधार पर आर्य समाजें बनती ही गयीं।

गत ८० वर्षों में बड़ी तीव्र गति से भारत में परिवर्तन आये। विधर्मी कार्यक्रम, देश के विभाजन, राजनैतिक नवचेतना से, जिस धीमी रफ्तार से धार्मिक संस्थाएं काम करती थीं, हार-सी गयीं। किन्तु फिर भी आर्य समाज ने अछूत कहे जाने वालों को पुनः समाज का अंग बनाया धर्म से डिगे लोगों को पुनः स्वधर्मी बनाने का यज्ञ किया। विदेशी आचरण शिष्टता एवं शिक्षा को हिन्दी एवं संस्कृत से टकराया। स्कूल, कालेज एवं गुरुकुलों की स्थापना की। स्त्री-शिक्षा पर बहुत बल दिया। लिखे पढ़े आर्यों ने अपनी विद्वत्ता से वैदिक साहित्य तैयार किया।

द्वितीय महायुद्ध के बाद स्थिति कुछ और हो गई। देश के विभाजन से आर्य समाज के कुछ गढ़ पाकिस्तान में चले गये। मनुष्यों का साधारण मौलिक स्तर कुछ नीचा हो गया। राजनीति ने जबरदस्ती लोगों में सत्ता की होड़ सी लगा दी। येन केन प्रकारेण चुनावों को जीतने की कोशिश होने लगीं, जिससे द्वेष, ईर्ष्या एवं फूट समाज में आ गई। और अभी कुछ ही समय पहले आर्य समाज के कर्मठ सेवक स्वामी आनन्द सरस्वती जी ने आर्य सम्मेलन, हैदराबाद में और पुनः ऋषि बोधोत्सव के संदेश में कहा, "आर्य नेताओं, विद्वानों और उन सभी के सम्मुख, जिन्हें भगवान दयानन्द से थोड़ा भी प्यार है, मैं झोली फैलाकर यह भिक्षा मांगता हूं कि आपस के झगड़े, फूट का जहर, समाप्त करो। मैं चाहता हूं भोगवाद में फंसी जनता, अध्यात्मवाद का सच्चा संदेश सुनाने का संकल्प करे। आज धरती पर अज्ञान फैल रहा है। मतवादों की आंधी ने सत्य धर्म की जड़ों को हिला दिया है। अतः प्रत्येक आर्य का यह परम धर्म है कि वह वेद-ईश्वरीय संदेश को धरती पर फैलाने का निश्चय करे।"

धन्य हैं हमारे पूर्वज जिन्होंने बर्मा में आर्य समाजें स्थापित की। इस समय जो महासम्मेलन हो रहा है, यह संसार के आर्य परिवार का एक अंश है। भारत में जो स्थिति है; उसका हम बर्मा वासियों पर कहां तक प्रभाव पड़े, यह हमारे अधीन

है हमारी संख्या दिनों-दिन भारत को हिन्दुओं की वापसी के कारण घटती ही जा रही है। किन्तु आर्य समाज का भविष्य बर्मा में आशापूर्ण दीख रहा है। आर्य समाज क्या है; आर्य लोग क्या कहते हैं, क्या विचारते हैं; क्या करना चाहते हैं—यह बाते यहां के मूल निवासी और बहुत से नेपाली और भारतीय बन्धु समझने लगे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है। उनके निकट आने से, उनके बीच वैदिक विचार धारा के सिद्धान्तों का प्रचार करना अब सम्भव हो गया है।

कोई समय था जब आर्यों को कुछ लोग हिन्दू धर्मी ही नहीं मानते थे। हिन्दू धर्म के विरोधी तक कहते थे। अब वह बातें नहीं रही हैं और भविष्य का कार्यक्रम बनाते समय इस सम्मेलन को ध्यान में रखना होगा कि एक मित्रतापूर्ण वातावरण में अपना प्रचार कार्य जारी रखा जाय। हमें अन्य मतावलम्बी लोगों का उस ढंग से सामना नहीं करना है; जैसा भारत के आर्य नेता कर सकते हैं. वहां धर्म के नाम पर जो आन्दोलन हो सकते हैं बर्मा में हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। हमें अपना कार्यक्रम यहां के कानून के अन्तर्गत सीमित रखना है। अतः यदि हम तेजी से प्रगति न भी कर पायें, तब भी हमें निराश नहीं होना है। दूसरे मतवालों से टक्कर न लेते हुए, उनकी कमजोरियों, बुराइयों या थोथेपन का खुलेआम ढोल न पीटते हुए, हमें अपना वैदिक धर्म का प्रचार करना है। धर्म प्रचार की छूट सरकार ने हमें दे रखी है। किन्तु अपने विचारों को लेकर दूसरों से हम झगड़ नहीं सकते। कहा है कि समयानुकूल व्यवहार सदा उचित होता है—Live and let live without interference—जीओ और बिना हस्तक्षेप के जीने दो। यह मूल सिद्धान्त अब विश्व के अनेक राष्ट्रों को प्रिय लगने लगा है। जो भारत मूलक लोग हमारे कार्य में साथ देवें, हम उनका स्वागत करें। उन्हें अपना वैदिक संदेश सुनावें। दूसरों का जिनसे हमारा मतभेद हो, उनका हम खण्डन न करें। कुछ लोग हिन्दू धर्म छोड़ कर अन्य धर्म की ओर झुकना चाहें, तो उनसे मिलकर विचार-विमर्श करें उन्हें समझायें। हो सकता है कि ऐसा विचार व सुझाव, आर्य समाज के आरम्भ काल के नीति से मेल न खाता हो, किन्तु देश और समय के अनुकूल नीति या कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करना लाभदायक रहेगा।

वेद हमें क्या संदेश देते हैं, यह जानने, सुनने, या पढ़ने की कोशिश हमने कम कर दी है। भौतिकवाद के तूफ़ान में हम आर्य समाजी भी फंसे दीखते हैं। यदि हमारा दैनिक आचरण वैदिक धर्मानुकूल बन जाय तो हमारी कई समस्याओं का हल निकल जावे। बर्मा में आर्य समाज अब एक सुसंगठित संस्था या समाज के रूप में आगे बढ़ रहा है। इसी संगठित भावना का चित्र इस सम्मेलन में सामने आ रहा है। हम एक विचार से एक लक्ष्य के लिए काम करें। अपने में छोटी-छोटी मतभेद की बातों को स्थान न देवें। कुछ प्रश्नों को, कुछ विवादों को या मतभेद को जिस दृष्टि से हम चार-पांच साल पहले देख सकते थे, इस समय इन दिनों उसी दृष्टिकोण से हम नहीं देख सकते। हमें कुछ त्याग करना पड़ रहा है और भी कुछ त्याग करना पड़ेगा। यह त्याग अपने धन में से, समय में से और शायद आराम में से

देना होगा—यदि वैदिक धर्म के प्रति हमारे मनों में श्रद्धा है तो कुछ सिद्धान्तों पर विचार करके अपनाने के लिए एक अपील करता हूं। वे विचार हैं—

(१) वेद प्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ।

(२) ऋषि दयानन्द के आदेशों पर मन, वचन और कर्म से चलो।

(३) असत्य का त्याग प्रत्येक मूल्य पर करो।

(४) अपने जीवन का कम से कम एक घण्टा प्रतिदिन वैदिक साहित्य के अध्ययन में लगाओ।

(५) अपने परिवार में अनार्य विचार धारा नहीं आने दो।

(६) आपस की फूट, पार्टीबाजी और पद की भूख से दूर रहो।

(७) अपनी मासिक आय का ३% या इससे अधिक धन वैदिक प्रचार के लिए या आर्य समाज के लिए दान में उसी प्रकार दो, जैसा कि इस देशवासी बर्मी भाई धर्म के लिए सदा देते रहते हैं।

आर्य बन्धुओ! संक्षेप में आपके सामने कुछ विचार जो मुझे अच्छे लगे प्रस्तुत किए हैं। यदि इन विचारों में आपकी सहमति हो तो मुझे अपने मन में संतोष होगा। धन्यवाद।

जब गांधी जी ने आर्य समाज का पक्ष लिया

घटना उन दिनों की है जब वाराणसी से निकलने वाले सनातन धर्म पत्र में आर्य समाज पर कीचड़ उछाला जा रहा था—तब महात्मा गांधी जी ने मालवीय जी को निम्न पत्र लिखा था—

भाई साहब !

ब्राह्मण महासम्मेलन नाम का अखबार काशी में प्रकट होता है। सनातनधर्म का रक्षार्थ अपने को जनाता है उस में महर्षि दयानन्द स्वामी पर बहोत गंदे आक्षेप आते हैं। इस बारे में आर्य समाजी पत्रों में बहुत टीका भी आती है। क्या आप उन लेखों को रोक नहीं सकते ?

आपका
मोहनदास

इस पोस्ट कार्ड पर साबरमती डाकखाने की ७ अगस्त १९२९ की मोहर है। पता पंडित मदनमोहन मालवीय, विश्वविद्यालय, बनारस सिटी लिखा है।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण

श्री प्रेमचन्द विद्याभास्कर, काव्यतीर्थ

कौरवों और पाण्डवों की सेनाएं कुरुक्षेत्र के विशाल मैदान में आगयीं। कौरवों के सेनापति भीष्म पितामह थे और पाण्डवों के अर्जुन। भीष्म पितामह ने कौरवों की सेना से एक ऐसे व्यूह की रचना की जिसमें प्रवेश करके युद्ध करना शत्रुओं के लिये बड़ा कठिन था, अर्जुन ने भी अपनी सेना से एक व्यूह बनाया। उसका नाम सूची व्यूह था। सबसे आगे महाबलवान् भीमसेन को खड़ा किया गया। जब दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो गईं, तब अर्जुन ने अपने सारथि श्री कृष्ण से कहा—हे भगवन्! मेरा रथ ऐसी जगह लेजाकर खड़ा कीजिए जहां से मैं दोनों सेनाओं को अच्छी प्रकार देख सकूं। अर्जुन की इच्छा से श्रीकृष्णजी ने उसका रथ दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाकर खड़ा कर दिया। दोनों पक्षों से शंखध्वनि होने लगी। अर्जुन ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उसने देखा—पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, दुर्योधन और कर्ण आदि युद्ध करने के लिए तैयार हैं। कोई आचार्य है, कोई चाचा है, कोई मामा और कोई भाई हैं। देखते ही अर्जुन बेहोश हो गया और उसके हाथ से धनुष-बाण छूट गये।

फिर अर्जुन रथ से नीचे उतर कर महाराज श्रीकृष्ण से हाथ जोड़ कर कहने लगे :—

हे महाराज मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, मुख सूख रहा है, शरीर काँपता है और मुझे रोमांच हो रहा है। मुझे किसी प्रकार के राज्य की या विजय की इच्छा नहीं है, यह सब सुख व्यर्थ हैं। हे भगवन् इस राज्य के सुख को भोगकर हम क्या करेंगे। जिन सम्बन्धियों के लिए हम राज्य की इच्छा करते थे, वही अब मुझसे लड़ने के लिये मेरे सामने खड़े हैं। इस युद्ध में विजय प्राप्त करके भूमि तो क्या, यदि त्रिलोक का राज्य भी मिले और वे चाहे मुझे मार लें परन्तु मैं उन पर शस्त्र नहीं उठाऊँगा। हे श्रीकृष्ण जी! ये सब हमारे बन्धु हैं, इनका वध करना उचित नहीं। इनको मारकर हम सुखी कैसे हो सकते हैं?

अर्जुन का मोह देखकर श्री कृष्णजी ने उसे समझाया और कहने लगे—

हे अर्जुन! संकट के समय तुम्हें यह अज्ञान कैसे हो गया? यह आर्यों के लिये उचित नहीं है इससे तो स्वर्गसुख और सम्मान का नाश होता है। यह नपुंसकता तुम्हारे लिये अनुचित है, तुम इसमें मत पड़ो, इस कायरता को छोड़ दो। तुम पण्डितों की-सी बातें करके भी अशोच्य के लिये शोक करते हो। जीते मरे की चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार बालपन, यौवन और वृद्धावस्था इस देह में आती हैं, उसी प्रकार जीव भी देह को प्राप्त करता है। आत्मा तो अचिन्त्य, अविनाशी और अमर है, यह देह ही केवल

नष्ट होती है। जो मनुष्य यह कहते हैं कि जीव मरता मारता है, वे नहीं समझते जीव न तो कभी मरता है और न ही किसी को मारता है। जीव न मरता है और न जन्म लेता है, वह अब भी है और मरने के बाद भी यहाँ ही रहेगा यह अजर अमर आत्मा वध होने पर मरता नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र धारण करता उसी प्रकार यह आत्मा भी पुरानी देह त्याग कर नवीन देह धारण कर लेता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चेनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यऽ शोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥

यह आत्मा न शस्त्रों से कट सकता है, न अग्नि से जल सकता है, न जल से गल सकता है और न ही वायु से सूख सकता है। आत्मा नित्य और सर्वव्यापक है।

इसलिए हे अर्जुन! तुम युद्ध से भागो मत और निश्चिन्त होकर युद्ध करो। यदि तुम युद्ध से भाग गए तो सब यही कहेंगे कि अर्जुन भय से युद्ध छोड़कर भाग गया है। जो आज तुम्हारा सम्मान करते हैं वह तुम्हें तुच्छ समझेंगे। इससे बढ़कर तुम्हारे लिए और क्या दुःख होगा? युद्ध में यदि तुम जीत गए तो राज्य पाओगे, यदि मर गए तो स्वर्ग पाओगे। इसलिये हे प्रिय अर्जुन! सुख-दुःख, जय-पराजय तथा लाभ-अलाभ को एक समान समझ कर युद्ध के लिए उठ खड़े हो।

श्रीकृष्ण का उपदेश सुनकर अर्जुन दुविधा में पड़ गया और सोचने लगा कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये! मेरे लिए कर्म क्या है और अकर्म क्या है? तब भगवान् कृष्ण ने फिर समझाया कि मनुष्य क्षण भर भी खाली नहीं रह सकता, प्रकृति के गुण सत्व, रज, तम मनुष्य से बलात् कर्म कराते रहते हैं। जो कर्मेन्द्रियों को रोक कर भीतर ही भीतर मन से विषयों को सोचता रहता है वह मिथ्याचारी है, वह कुछ नहीं करता ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो कर्मेन्द्रियों को मन से रोककर शम, दम आदि से युक्त होकर असक्त रहता हुआ कर्म करता है वही विशिष्ट पुरुष है, वही कर्मयोगी है। न तो केवल काम को आरम्भ न करने से पुरुष ठाली कहलाया जा सकता है और न केवल कर्म छोड़ देने से ही किसी को सिद्धि मिल सकती है। (श्रीकृष्ण का सिद्धान्त यह है कि आप चाहे ज्ञानमार्ग पर से चलिये सत्य मार्ग पर जाइये, अथवा यज्ञमार्ग चलिए या भक्तिमार्ग को लीजिए, पर कर्म का पचड़ा लगा ही रहेगा। इस लोक का कर्मों के साथ बन्धन लगा हुआ है। इसलिए असक्त रहकर—अहंभाव छोड़ कर— कर्म करते रहना चाहिए।

कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदा-चन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा
ते संगोऽस्त्व-कर्मणि॥

अर्जुन को समझाते हुए श्रीकृष्ण भगवान् उपदेश करते हैं कि तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में ही है, फल की चिन्ता तुम्हें नहीं करनी चाहिये। कर्म का फल विचार कर कर्म नहीं छोड़ बैठना चाहिये।

कर्म की महत्ता पर स्थान स्थान पर विशेष बल दिया गया है। गीता में १८ अध्याय हैं, उन सब में ही कर्मयोग के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण ने कुछ-कुछ उपदेश

किया है ।

श्री कृष्णजी विद्वान्, घर्मात्मा, न्यायकारी, राजनीतिज्ञ और कर्मयोगी राजा थे । उस समय इनका यश चारों ओर फैला हुआ था । इन्होंने स्वयं प्रतिज्ञा की थी कि साधुओं की रक्षा, दुष्टों के विनाश, तथा धर्म की स्थापना के लिए मैंने जन्म धारण किया है । उनके जीवन की घटनाओं से यही पता चलता है कि उनका समस्त जीवन अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति में ही व्यतीत हुआ है । अपने सुख के लिये या अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने कोई भी कार्य नहीं किया । उनके सब काम परोपकार के निमित्त ही होते थे । यही कारण है कि आज तक भी श्रीकृष्ण का नाम घर-घर में आदर के साथ लिया जाता है । उनके कई श्रद्धालु भक्त तो उन्हें परमात्मा ही मानते हैं । महर्षि दयानन्द सरस्वती की सम्मति यह थी की श्रीकृष्ण सर्वोत्तम निष्पाप महापुरुष थे, उन्होंने जन्म से लेकर मरण पर्यन्त कोई पाप नहीं किया ।

श्रीकृष्ण जी अपने युग में सबसे बड़े राजनीतिज्ञ माने जाते थे । उनकी राजनीति का मूल भी धर्म, सत्य और न्याय की रक्षा करना ही था ।

श्रीकृष्ण जी पक्के अहिंसावादी थे किन्तु कायर नहीं थे । महाभारत का युद्ध रोकने के लिये श्रीकृष्ण ने बड़ा यत्न किया । वे समझते थे कि यदि कौरव और पाण्डव आपस में लड़ पड़े तो अपार जन-संहार होगा और हिंसा का नग्न ताण्डव सामने आएगा । मारकाट न हो, इसी इच्छा की पूर्ति के लिए वे दुर्योधन को समझाने के लिए पाण्डवों के दूत बनकर गये । युधिष्ठिर ने कहा कि वहां जाने से दुर्योधन आप का और हमारा अपमान करेगा इसलिये वहां नहीं जाना चाहिए । इस पर श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया कि जगत की भलाई के लिये मुझे अपने अपमान का विचार नहीं है । यह कह कर वे हस्तिनापुर पहुंच गए, वहां वे दुर्योधन के अतिथि न बन कर महात्मा विदुर के अतिथि बने । यद्यपि दुर्योधन ने भी कृष्ण के लिए शाही स्वागत की सब तैयारियां कर रखी थी, पर उनकी चिन्ता उन्होंने नहीं की । विचार के लिये सभा हुई । उसमें बड़े-बडे विद्वान्, पण्डित, राजा-महाराजा और ऋषि-मुनि एकत्र थे । सब के सामने श्री कृष्ण जी ने यही कहा कि हम कौरवों तथा पाण्डवों का झगड़ा मिटाने आए हैं । परस्पर की फूट से कैसे-कैसे अनर्थ हो जाते हैं, यह उन्होंने अच्छी प्रकार समझाया ।

श्रीकृष्ण जी जब शान्ति का, अहिंसा का और मारकाट रोकने का पूरा प्रयत्न कर चुके और उन्होंने देखा कि दुर्योधन अपनी हठ पर अड़ा है और वह अधर्मी है, तब उसे दण्ड देना ही उन्होंने धर्म समझा । यदि उस समय भी वह शान्त रहते तो इससे अधिक कायरता क्या होती ? उन्होंने विवश होकर ही पाण्डवों को युद्ध की सम्मति दी ।

श्रीकृष्ण के जीवन में सहनशीलता उच्चकोटि की थी । तभी तो शिशुपाल के सौ अपराध तक उन्होंने क्षमा कर दिये थे । अपराधों की पराकाष्ठा होने पर भी यदि अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो वह कायरता समझी जाती है । क्षत्रिय का धर्म निर्बलों की रक्षा करना है । अत्याचारी और अधर्मी को दण्ड देना, उसके सामने समझौते पेश करते रहना और झुकना, राजाओं का कर्त्तव्य नहीं । श्री कृष्ण ने एक बार भी अधर्मी के सामने

घुटने नहीं टेके, वे सदा धर्मात्मा का मान करते थे और उसी का पक्ष लेते थे। इस बात को वे भली प्रकार समझते थे कि यदि अधर्मी के साथ समझौता करते रहेंगे, उसकी शर्तें मानते रहेंगे तो उसकी शर्तें तो बढ़ती रहेंगी। दुष्ट को समझाना अवश्य चाहिए। यदि वह समझाने से मान जाय तब तो ठीक, अन्यथा उसे दण्ड देना ही परमधर्म है। उसके साथ समझौता नहीं हो सकता। भला धर्म और अधर्म का, पाप और पुण्य का, सत्य और झूठ का भी कभी समझौता हुआ है!

राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर ने देश-विदेश के सब राजा-महाराजाओं को निमन्त्रित किया था। उसमें श्रीकृष्णजी भी पधारे थे। युधिष्ठिर ने सब को एक-एक काम सौंप दिया। दुःशासन भोजन का प्रबन्ध करने में, अश्वत्थामा ब्राह्मणों के आतिथ्य में, संजय राजाओं के सत्कार में नियुक्त किये गये। भीष्म और द्रोण सभी कार्यों का निरीक्षण करने लगे। भेंट में आये रत्नों को रखने का काम दुर्योधन ने लिया। सब एक-एक कार्य पर नियुक्त हो गये। श्रीकृष्णजी बोले—हे युधिष्ठिर! तुमने सबको एक-एक काम दिया है, पर मुझे कोई काम नहीं दिया। युधिष्ठिर ने कहा—महाराज आप जो कार्य चाहें कर सकते हैं। श्रीकृष्ण ने कहा कि यज्ञ में आए हुए राजा-महाराजा, ब्राह्मण तथा ऋषि-मुनियों के पैर धोने का काम किसी ने न लिया, यह काम मैं करूंगा। श्रीकृष्ण ने यही काम किया। यज्ञ की समाप्ति पर जब युधिष्ठिर पूजा करने लगे तो उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि सबसे पहले किस को तिलक करना चाहिए। भीष्मजी से पूछा गया। भीष्म जी ने कहा कि यहां जितने भी उपस्थित हैं उनमें सब प्रकार से श्री कृष्णजी ही बड़े हैं और उन्होंने यज्ञ में सबसे महान् कार्य सेवा का कार्य किया है। अतः सर्व प्रथम वही पूज्य हैं। युधिष्ठिर ने भीष्म जी की सम्मति से सर्वप्रथम श्रीकृष्ण जी को ही तिलक किया।

श्रीकृष्ण जी का सिद्धान्त था कि बड़े बनने का उपाय सेवा करना है। बड़े पद सम्भालकर सर्वसाधारण से अलग रहना जनता की सेवा नहीं। यह तो शासन है। केवल शासक जनता का प्रिय नहीं हो सकता, जनता के हृदय में तो उसे ही स्थान मिलेगा जो जनता की सेवा करेगा।

योगेश्वर कृष्ण के प्रति योगिराज दयानन्द की श्रद्धांजलि

श्रीकृष्णजी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"देखो, श्रीकृष्णचन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश्य है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरण पर्यन्त कुछ भी बुरा काम किया हो ऐसा नहीं लिखा।"

—महर्षि दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश ११ वां समुल्लास

क्या आर्य बाहर से आये थे ?

बोधेन्द्रदेव शास्त्री

"किसी देश का इतिहास उस देश के निवासियों का लेखा जोखा होता है। इति-ह-ग्रास ग्रर्थात् उनका रहन-सहन खान-पान व्यवहार ऐसा था।"

ग्राजकल हमारे स्कूल कालिजों में जो इतिहास पढ़ाये जाते हैं वे हमारे बालकों के मस्तिष्क में भ्रान्ति पैदा करते हैं।

इनमें लिखा होता है—"सिन्धु नदी की घाटी में रहने वाले द्रविड़ों को जिन लोगों ने हराया उनको ग्रार्य कहते हैं। यही ग्रार्य हमारे पूर्वज थे।" इस बात का ठीक पता नहीं, कि ग्रार्यों का आदि देश कौन-सा था ? कुछ लोगों का कहना है, कि वे मध्य एशिया से हिन्दुकुश के दर्रों में होकर भारत ग्राये थे। कुछ लोगों का कहना है कि ग्रार्य लोग उत्तरी यूरोप ग्रथवा मध्य यूरोप में लिथूनियां से भारत में ग्राये। कुछ लोगों का कहना है कि ये उत्तरी ध्रुव प्रदेश में रहते थे, ग्रौर वहां से यूरोप ग्रफ़गानिस्तान तथा भारत ग्राये। कुछ लोगों का विश्वास है कि ग्रार्य भारत के ग्रादि निवासी थे ग्रौर यहां से दूर-दूर देशों को गये थे। निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता कि इनमें से कौन-सा मत ठीक है, परन्तु ग्रधिकतर लोगों का कहना है कि ग्रार्य मध्य एशिया के रहने वाले थे। (**हमारा इतिहास तथा नागरिक शास्त्र, भाग १ कक्षा ६ के लिए**) प्रारम्भ में ही बालकों की बुद्धि में यह बात बैठ जाती है कि ग्रार्यों का कोई ठीक-ठीक पता-ठिकाना नहीं है। यहां की ग्रादि निवासिनी कोल भील संथाल द्रविड़ादि जातियां हैं।

इस गलत इतिहास का यह परिणाम हुग्रा कि दक्षिण में द्रविड़ मुन्नेत्र कषग़म ग्रादि संस्थाएं उत्तर भारत ग्रौर हिन्दी का विरोध कर रही हैं।

ग्राइये विचारें, कि क्या ग्रार्य सचमुच दूर विदेशों से ग्राये थे या इसी देश के मूल निवासी थे ? इसमें विचारणीय विषय हैं—

१—क्या कोल, भील, द्रविड़, संथाल इस देश के ग्रादिवासी थे ?

२—ग्रौर क्या ग्रार्यों ने बाहर से ग्राकर उन्हें सिंधु घाटी से मार भगाया ग्रौर उन्हें दक्षिण में शरण लेनी पड़ी ?

३—ग्रथवा क्या ये सब लोग ग्रार्यों की सन्तान थे, ग्रौर इसी देश में बसते हुए ग्राचार-विचार की भिन्नता के कारण पृथक-पृथक हो गये।

संख्या १ के बारे में जो लोग यह कहते हैं कि ग्रार्यों के ग्राने से पहले इस देश में ऊपर कथित ग्रादिवासी जातियां रहती थीं ग्रार्यों ने उनके देश पर बलात् ग्राधिपत्य कर लिया, उनसे निम्न प्रश्न

पूछे जा सकते हैं—

१—आर्यों के देश का नाम आर्यावर्त्त था, और कालान्तर में इसी देश के एक प्रसिद्ध आर्य राजा भरत के नाम से इसका नाम भारतवर्ष हो गया, किन्तु इससे पूर्व तथाकथित आदिवासी जातियों के देश का क्या नाम था ?

२—आर्यों के धर्म ग्रन्थ वेद हैं, उक्त आदिवासियों के धर्म ग्रन्थों के क्या नाम थे ?

३—आर्यों का धर्म वैदिक संस्कृति विश्ववाणी, तथा वेद विहित कर्म ही आचार हैं, उक्त जातियों के धर्म संस्कृति आदि क्या थे ?

यदि यह कहा जाये, कि क्योंकि वे लोग जंगली और अपठित थे, अतः धर्म संस्कृति आदि से अनभिज्ञ थे, और किसी परिमार्जित सभ्यता का विकास उन में नहीं था, तो सही, किन्तु इतने से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता, कि उनके देश का कोई नाम अवश्य होना चाहिये था। क्योंकि अपठित असभ्य जंगली जातियों में भी स्थान व्यक्ति पशु औज़ार, वस्त्र पात्र आदि के नाम रखने का रिवाज पाया जाता है। अतः यदि कोई था, तो उनके देश का नाम अवश्य होना चाहिये था। किन्तु आज तक कोई नहीं बता सका, कि आर्यावर्त्त तथा भारतवर्ष से भिन्न, पूर्व समय में इस देश का और भी कोई नाम था।

अब इस बात पर विचार करना है कि आर्य इसी देश के मूल निवासी हैं। और तथाकथित आदिवासी आर्यों के ही वंशज हैं।

हां, सृष्टि के आदि में मनुष्यों की उत्पत्ति एक ही स्थान में हुई थी, और उन्हीं में से चार सर्वश्रेष्ठ पवित्रात्मा महर्षियों को चारों वेद ईश्वर ने ज्ञानरूप में दिए थे। पुनः उन्होंने अन्यों को वेद ज्ञान सिखाया। और आदिकाल में वेद के शब्दों द्वारा ही व्यक्ति पशु आदि के नाम, कर्मों का विधान किया गया। "सर्वेषां च नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्, वेद शब्देभ्य एवादौ प्रथक् संस्थाश्च निर्ममे।" मनु०

काल के विषय में विभिन्न मत होते हुए भी सारे संसार के विद्वान यह मानते हैं कि संसार के सब पुस्तकों में पुराना पुस्तक ऋग्वेद है।

पुरानी बातों का ज्ञान पुराने पुस्तकों या व्यक्तियों से ही होता है। अब से कुछ काल पूर्व बूढ़े व्यक्ति १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध की गाथाएं बड़े रोचक ढंग से बताया करते थे, और बहुत से समाचार-पत्र सम्वाददाता भी उनसे भेंट कर उनके कथित समाचार, पत्रों में प्रकाशित कराते थे। किन्तु अत वे नहीं रहे, अबः पुस्तकें ही प्रमाण हैं। आदि सृष्टि का मानव भी कालचक्र गति से अब यहां नहीं है किन्तु ऋगादि चारों वेद प्रमाणरूप में अद्यावधि मौजूद हैं।

अतः स्वतः प्रमाण पुराना पुस्तक ऋग्वेद इस बारे में कह रहा है।

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते,
रन्धया शासदव्रतान्

(ऋग्वेद मं १ सूत्र ५१ मन्त्र ८)

इसका यही अभिप्राय है कि सृष्टि के आदि में आर्य और दस्यु दोनों प्रकार के मानव पैदा हुए। किन्तु अव्रत दस्युओं पर आर्यों ने शासन किया, अतः दस्यु प्रजा को दुःख देने वाले थे और आर्य सुख देने वाले। उद्भव के आदि में मानव

नस्ल से नहीं स्वभाव से आर्य था। पश्चात् आर्यों के वंश चले और आर्यावर्त की सीमा निर्धारित की गई। धर्म शासक मनु ने घोषणा की—

आसमुद्रान्तु वै पूर्वाद्—
आसमुद्रान्क्षु पश्चिमात्।
तयो रेवान्तर गिर्योरा-
र्यावर्त्त विदुर्बुधाः ॥

पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक, तथा विन्ध्य हिमालय के मध्य में आर्यावर्त्त देश है। मनुकाल में विन्ध्यपर्वत से आगे समुद्र था।

आर्यों का आदि निवासस्थान

मानव प्राणियों का प्रथम प्रादुर्भाव वहीं सम्भव है। जहां जल बहुल पृथिवी पर शुष्क, आकाशीय वायु सेवनार्थ सबसे ऊर्ध्व कन्दमूल फलादि मानव जीवन की आधारभूत सामग्री से युक्त तथा मानव विकास से अनुकूल स्थान हो।

ऊंचाई की तुलना में आज भी संसार का कोई स्थान हिमालय से ऊंचा नहीं है। शेरपा तेनसिंह और हिलेरी की दिलेरी की चर्चा दुनिया में इसलिए है कि उन्होंने संसार में सबसे ऊंचे हिमालय की गौरीशंकर (माउण्ट एवरेस्ट) चोटी पर विजय पाई है जो २९६०० फुट की ऊंचाई का संसार में सर्वोच्च स्थान है।

कन्दमूल फलादि औषधियों का तो यह घर ही है। स्वास्थ्यप्रद तथा सौम्य स्थान है (सौम्यो हिमगिरिर्मतः) अतः मानव विकास के अनुकूल स्थान है। एवं इस विषय की पुष्टि के लिए प्रमाण भी उपलब्ध हैं।

हिमालयाभिधानोऽयं ख्यातो लोकेषु पावनः अर्ध योजन विस्तारः पंचयोजनमायतः परिमण्डलयोर्मध्ये मेरूरुत्तम पर्वतः— ततः सर्वाः समुत्पन्ना वृत्तयो द्विजसत्तम ॥

महाभारत

हिमालय नाम पर्वत संसार में विख्यात है, वहां पांच योजन लम्बा और आधा योजन चौड़ा एक स्थान है, इस घेरे में एक मेरू नाम का उत्तम पर्वत है। वहीं पर आदि मानव की उत्पत्ति हुई। मेरू के दक्षिण और मानसरोवर के ऊपरिभाग में प्रजा पर धर्मशासन करने वाले मनु का निवास स्थान था।

इन युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध है कि आर्य किसी भी अन्य देश से नहीं आये अपितु इसी आर्यावर्त्त देश के मूल निवासी हैं।

द्रविड़ कौल भिल्ल संथालादि जातियों का वृत्तान्त

ये सब जातियां आर्यों के ही वंश में उत्पन्न तथा आर्यों की अंगभूत जातियां हैं। पुरा काल में सन्ध्या यज्ञादि नैतिक तथा सदाचारादि शाश्वत शुभ कर्मों को न करने वाले एवं वेद की निंदा करने वाले को सज्जन समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था।

स साधुभिर्वहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः

और इस प्रकार सदुपदेशक ब्राह्मणों के न पहुंचने से, शनकैस्तक्रिया लोपादि माः क्षत्रिय जातयः, वृशलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च। मनु।

और सदुपदेश के न मिलने से ये क्षत्रिय जातियां शूद्र हो गईं, तथा इनके नाम (तथा पौण्ड्र काश्चौण्ड्र द्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः) पौण्ड्र चौण्ड्र काम्बोज यवन और शक हो गये।

जैसे मुस्लिम बादशाहत के जमाने में हमसे बिछड़े हुए हमारे भाइयों के रांघड़ राजपूत, मूलेजाट चौहान-गूजर आदि नाम पड़ गये।

ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णन है कि तस्य ह विश्वामित्रस्य एक शतं पुत्रा आसुः पञ्चाशत् ज्यायांसः। पंचाशत् कनीयान्सः तद् ये ज्यायान्सो न ते कुशलं मेनिरे।ताननु व्यावहार तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एते ऽन्ध्राः पौण्ड्रा शवराः— पुलिन्दा मुतिवा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति। विश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः।

ऋषि विश्वामित्र के एक सौ पुत्र (शिष्य) थे। पचास विद्यालय और पचास महाविद्यालय के छात्र। महाविद्यालय के छात्र स्वेच्छाचारी हो गये, और आजकल के हड़ताली छात्रों की भांति गुरु विरोधी हो गए, गुरु का सदुपदेश नहीं माना। गुरु विश्वामित्र क्षत्रिय राजा और ऋषि थे। उन्होंने बाग़ी छात्रों को अपने गुरुकुल से भ्रष्ट कर दिया, स्नातकोत्तर प्रमाण-पत्र न मिलने से प्रजा ने भी उनको मान्यता न दी उन्होंने भी विरोध व क्रोधवश अपने नाम, अन्ध्र-पौण्ड्र, पुण्ड-शबर पुलिन्द मुतिवादि रख लिए। विश्वामित्र के भ्रष्ट शिष्य दस्युओं में बहुत पाये जाते थे।

उक्त उद्धरणों से प्रमाणित हो रहा है कि ये सब आर्य जाति के लाल विभिन्न कारणों से अपने गुरु पूर्वजों से रुष्ट होकर पृथक् हो गये और आज विदेशियों द्वारा लिखे इतिहास के भुलावे में आकर अपने को आर्यों से बिल्कुल अलग मान बैठे हैं। उनके किसी भी तरह के संगठन में सम्मिलित होने का विरोध करते हैं।

अतः प्रमाणों और प्राप्त ग्रंथों व तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष यही निकलता है कि 'आर्य' ईश्वर के पुत्र, वेदानुयायी ही भारत के प्राचीनतम वासी थे। भारत की पुण्य भूमि ने ही आर्यत्व का संदेश भूमि पर फैलाया। अन्यथा कल्पनाएं तो भारत को भ्रष्ट करने हेतु ही फैलायी जा रही हैं।

दयानन्द आदेश : फूट से बचो !

विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयम्वर विवाह······वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। १७०

देखो ! महाभारत युद्ध में······आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःख सागर में डुबा मारेगा। १७०–१७१

सत्य की महिमा

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का एक प्रवचन

प्राचीनकाल में वेदों और उपनिषदों के ही पठन-पाठन का विधान था। आचार्य लोग शिष्यों को यही पढ़ाते थे। सार्वजनिक सभाओं में भी इन्हीं का उपदेश होता था। इनमें सत्य की बड़ी महिमा बताई है। सत्य की सदा विजय होती है और झूठ की पराजय। कुछ समय के लिए झूठ की विजय होती प्रतीत हो यह अलग बात है किन्तु अन्त में सत्य ही विजयी होता है। जिस देश में सत्य का प्रचार हो उसकी अवस्था अच्छी होती है विचार कीजिए कि सत्य है क्या वस्तु। एक मनुष्य जो सोचने में देर लगा देनी चाहिए किन्तु जो कहना हो उसे ठीक भली प्रकार विचार लेना चाहिए। आप कहें कि स्वामी जी भोजन हमारे घर करना। यदि मेरी इच्छा हो तो हां कर देनी चाहिए, यदि न हो तो न। सत्य से अभिप्राय है मन, वाणी और कर्म तीनों से सत्य। यह कोई कठिन कार्य नहीं है महाराज रामचन्द्रजी का चरित्र पढ़ते हैं। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते थे। रामायण उन की कीर्ति का गायक है। लोग उन्हें अवतार मानते हैं। किन्तु वेद-शास्त्र ऐसा नहीं कहते। आर्य समाज भी उन्हें अवतार नहीं मानता। राम में जहां अन्य बहुत से गुण थे वहां एक यह विशेष गुण था कि वे सत्य बोलते थे। कोई संस्था या व्यक्ति जब वह सत्य का प्रचार करता है और सत्य को अपनाता है तो उसका गौरव बढ़ता है। यह सब बातें विचार कर देखें कि उपनिषदों का तात्पर्य क्या हैं।

सत्य का एक और लक्षण भी है। वह यह कि जो सदा सर्वदा एक सा रहे, वह सत्य। जिसका न आदि न अन्त। जो समय समय पर बदलता रहे वह अनृत होता है। परमात्मा आदि अन्त हीन है। सत्य की पूर्ति विद्या और ज्ञान के बिना नहीं हो सकती। आजकल सत्य का स्थान झूठ ने लिया है। झूठ बोलो और झूठ प्रमाणित न होने दो। न्यायालय क्या क्या होता है—

गवाह साक्षी देता है। वादी-प्रतिवादी दो में से एक अवश्य झूठा होता है। न्यायाधीश उसी को सत्य मानेगा जिसके पक्ष में बहुत से गवाह हों। इसलिये सत्य भाषण मनुष्य का गौरव है। परमात्मा तीनों कालों में सत्य है। किन्तु प्रकृति नहीं। प्रकृति का नाश तो नहीं होता किन्तु यह बदलती रहती है। यह अपना रूप बदलती रहती है। सत्य परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। प्रकृति में गुण परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार प्रकृति परिणामी है।

छोटा बालक निर्दोष होता है। वह झूठ नहीं बोलता। किन्तु जब युवावस्था में आता तो वह बाल्यावस्था का परिणाम

है फिर बुढ़ापा आता है इसलिये प्रकृति से काम लो, किन्तु यह अमर नहीं है। इसलिए वह सत्य भी नहीं है।

पन्द्रह सौ वर्ष हुए यहां चीनी यात्री आए। उन्होंने भारतवर्ष का इतिहास लिखा। उस समय वे जिस के घर जाते पानी मांगते पर दूध मिलता। भारतीय अतिथि का बहुत सत्कार करते थे। घर से बाहर जाने पर ताला लगाने की आवश्यकता नहीं होती थी। यदि वह मेगस्थनीज यात्री आज यहां आये तो कहेगा कि जिस भारत का मैंने इतिहास लिखा था वह कोई और ही भारतवर्ष रहा होगा यह तो नहीं हो सकता आज चोरों का बोलबाला है। स्टेशनों पर जेब काटने वालों से सावधान रहने के विज्ञापन लगे रहते हैं। मनु जी ने जिस समय के भारतवर्ष का वर्णन किया है उसकी आज एक भी अच्छी बात नहीं मिलती। जब कोई ईश्वर को छोड़ कर किसी अन्य की पूजा करता है तो धर्मच्युत हो जाता है।

क्या जीवात्मा सत्य है। हां सत्य है। परन्तु इसमें अध्यास आ जाता है। वह शरीर से विकल्पित होकर और शरीर के दुःख को अपना दुःख मानता है यदि मैं रस्सी को सांप समझ लूं तो क्या उसमें काटने की शक्ति आ जायगी। किन्तु फिर भी मनुष्य रस्सी को सांप समझ कर डर जाता है। अध्यास में बुरा है इसलिए यह सत्य नहीं हो सकता। प्रकृति में परिणाम और जीवात्मा में अध्यास इसलिये दोनों ही सत्य नहीं।

ईश्वर के अतिरिक्त और किसी के आगे सिर झुकाना बुरा है। ईश्वर का ही पूजन और भजन करो। साथ-साथ सत्य भाषण का सभी अभ्यास करे। चाहे कोई धनी हो या निर्धन, स्त्री या पुरुष, सबका एक ही ईश्वर है। वह एकरस रहने वाला है भारतवासियों ने इसे भुला दिया।

जो भूल जाय उसको भटकना पड़ता है। एक सत्य को मान लो सारे झगड़े समाप्त हो जायेगे।

ऋषि किसे कहते हैं? आजकल बी० ए०, एम० ए० आदि की डिग्रियां मिलती हैं। पूर्व काल में विद्वानों को ऋषि मुनि की पदवियां मिलती थीं। ऋषि वे होते थे जिन्होंने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया होता था।

यदि कहीं दंगल हो रहा हो तो आप वहां बिना टिकट के नहीं जा सकेंगे। किन्तु यदि कोई पहलवान जाना चाहेगा तो उसे नहीं रोका जायगा। कारण कि वह समान गुणशील वाला है। परमात्मा सत्य है इसके साथ उसका ही मेल हो सकता है जो सत्यपरायण सत्यमानी और सत्यकारी हो। सत्यमानी तो बहुत हो सकते हैं किन्तु सत्यकारी होना कठिन है। जब यह तीनों चीजें हो जायें तो ज्ञान की पूर्ति होती है। ऋषि वह जो वेदशास्त्रों का ज्ञाता हो। जो स्वयं सन्मार्ग पर चले और दूसरों को चलाये। मैं पूछता हूँ कि विद्वान् कौन है? आप कहेंगे, जो बहुत पढ़ा-लिखा हो। और रुपया कमाता हो, किन्तु ऐसे अनपढ़ मिल सकते हैं जो रुपया खूब कमाते हैं। इसलिये कहा है कि "विद्या ददाति विनयम्" जिसने अपने कर्त्तव्न का पालन बिना अहंभाव के किया वह विनीत विनय कहते है दूसरे के दुःख से दुःखी होने को। जब दुःख का अनुभव करेगा तो दूर करने का यत्न भी करेगा।

एक बिलौर (पत्थर) का गोला लो

और उसके पास गुलाब का फूल रखिये। फूल प्रतिबिम्ब उस गोले पर पड़ेगा। किन्तु मिट्टी का ढेला उस प्रतिबिम्ब को ग्रहण नहीं कर सकता।

महात्मा बुद्ध जंगल में थे। एक व्याध ने पक्षी को तीर मारा वह गिर पड़ा। महात्मा बुद्ध ने उस पक्षी को उठा कर तीर निकाल दिया। इतने में व्याध ग्रा गया। उस ने पक्षी को मांगा। व्याध ने कहा कि मैंने इसे तीर से गिराया है। महात्मा बुद्ध ने कहा कि यह मेरा है क्योंकि मैंने इसे बचाया है ग्रन्त में निर्णय यह हुग्रा कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा।

यदि ग्रापका ग्रन्तःकरण पवित्र हो तो क्या यह ग्रछूत, ग्रछूत रह जायें। मैंने संयुक्त प्रान्त में देखा वहां लोग कहते थे। कि यह महात्मा गाँधी जी का वचन है कि वे अछूतों के दुःख वे दुःखी हैं। उनकी ग्राज्ञा है कि इनके लिए मन्दिर खोल दो। मन्दिर खोल दिये गये। किन्तु ज्यों ही ग्रछूत मन्दिरों से निकले, गंगा जल की छिड़काव करा दी गई। ग्ररे भाई! यह सोचो कि जो गंगा जल मन्दिरों को शुद्ध करता है उसे इन ग्रछूतों पर ही क्यों नहीं डाल देते। सारा झगड़ा ही समाप्त हो जायगा। कितना ग्रच्छा उपाय है।

ग्रार्य समाज में भी ग्रभी निर्बलता है। ग्रभी शक्ति नहीं ग्राई जो समाज में एकता उत्पन्न कर दे। मैं बरेली गया वहां ग्रछूतोद्धार पर व्याख्यान हुए। एक व्यक्ति ने विरोध किया कि महाराज ये ग्रछूत तो पांव के जूते हैं। इन्हें सिर के साथ कैसे मिलाया जाय। सर पर तो पगड़ी ही रहेगी। मैंने उत्तर दिया भाई जब समय ग्राता है तो पगड़ी पांव पर गिरती है ग्रौर जूती सिर पर पड़ती है। यह बड़ाई का ग्रभिमान झूठा है। बड़ा वह जो ग्रड़प्पने का काम करे स्वयं ग्रपनी प्रशंसा न करे। बड़े से बड़ा भी वह मनुष्य छोटा गिना जायगा जो स्वयं ग्रपनी प्रशंसा न करेगा। प्रशंसनीय जिससे जाति का गौरव बढ़े।

आपके पास मोटर है ग्राप बड़े ग्रादमी हैं किन्तु जब यह कहा जाता है कि भारत वासी पराधीन हैं तो सबकी निन्दा होगी है। ऋषि समदर्शी होता है। उस की दृष्टि में सब समान हैं। सौभाग्य से पूर्वजों ने हमारे लिए सुन्दर मार्ग बनाया है। किन्तु हम हैं जो उस पर चलते नहीं। देश सम्प्रदायों में बंट चुका है। धन का उचित उपयोग सार्वजनिक कार्यों में किया जाता है।

मध्य प्रदेश के मुसलमान भी हिंदी जानते हैं। वहां जिला सागर का इन्स्पैक्टर मुसलमान था। इसने 'बूढ़े का व्याह' शीर्षक की एक बहुत ग्रच्छी कविता लिखी है। एक ब्राह्मण ने रुपया लेकर ग्रपनी कन्या का विवाह बूढ़े व्यक्ति से कर दिया। उस कन्या की दिशा का वर्णन इसकी कविता में है।

इस देश के विद्वानों के पास विश्व के कोने-कोने से लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए ग्राते थे। इतिहासज्ञ पांच हजार वर्ष से पूर्व का वृत्तान्त नहीं जानते। किन्तु इस देश की दिशा बिगड़े साढ़े पांच हजार वर्ष हो गये यह देश महाभारत से एक सहस्र वर्ष पूर्व बिगड़ने लगा था। ग्रर्जुन के पूछने पर कृष्ण जी ने कहा था कि लोग वेद द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर ग्राचरण नहीं कर रहे। इसी कारण दुःख पा रहे हैं।

उपनिषद काल में सत्य की प्रशंसा होती थी। उपनिषद पांच हजार वर्ष पूर्व

के हैं। दर्शन उस से भी पूर्व के। उस समय कोई सम्प्रदाय नहीं था। सारस्वत और गौड़ का भेद भाव नहीं था। योग्यता नुसार कार्य का विभाजन कर रखा था। न ब्राह्मण अच्छा था न शूद्र बुरा। सम्प्रदायों के बढ़ने से भारत का गौरव क्षीण हो गया। आर्य समाज ने इन्हें सीधे मार्ग पर लाना था, पर वह स्वयं न सम्भल सका। आर्य समाज में विचार शक्ति है किन्तु इन विचारों से क्रियात्मक रूप दिया जाए तब तो संसार बातों की बातें ही समझता है। यह है भी ठीक। सत्य की जय और असत्य की पराजय।

आप कहेंगे शरीर मल मूत्र का स्थान है। इसमें सत्य कहां। ईश्वर सत्य है वह निर्मल है। किन्तु यदि यत्न किया जाय तो कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती।

बाल विवाह बुरा है। पहले किया करते थे तो प्रशंसा होती थी किन्तु अब वह बात कहां रही।

आपने अपना कर्त्तव्य भुला दिया तो दूसरे देश के लोगों ने आक्रमण किये। शहाबुदीन मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण करने से पूर्व यहां दो आदमी साधु वेष बनाकर भेजे। उनके द्वारा उसे यहां की स्थिति का पता लग गया। वे लगातार दो साल यहां रहे और उसके बाद उन्होंने गौरी को पत्र लिखा।

हर किसे नाल्ला किन्दाज दस्ते गैर
हिन्दू अज़ दस्ते हिन्दू बर बाद

हर एक को दूसरे के हाथों नष्ट होते देखा था किन्तु हिन्दू को हिन्दू के हाथों नष्ट होते देखा। यह तेरह सौ वर्ष पूर्व का दृश्य है जो बुद्धिमान थे उन्होंने मार्ग को सच्चाई से प्यार किया। सच्चाई के सहारे वे सुख प्राप्त कर गए और सत्य-स्वरूप परमात्मा से मिल गये।

झूठ रोग है और सत्य स्वास्थ्य। जो मनसा वाचा कर्मणा सत्यनिष्ठा है उस के मार्ग को कोई नहीं रोक सकता। यह त्रिकाल सत्य है। परमात्मा को तो सत्य स्वरूप कहा गया है। जिसके हृदय में वे है वहां सच्चाई है। ईश्वरोपासना के लिये किसी भी बाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं है। यदि मूर्ति ईश्वर का रूप है तो उसके पुजारियों में दया आदि गुण होने चाहिये। सब कहते हैं कि मनुष्य को मनुष्य से घृणा नहीं करनी चाहिये किन्तु ईश्वर के पूजक ही सबसे अधिक घृणा करते हैं।

बौद्ध युग में शंकराचार्य उज्जैन पहुंचे। वहां आस्तिकता का प्रचार किया। कईयों ने रोका किन्तु एक न मानी। राजाज्ञा हुई कि इन्हें फांसी पर लटका दिया जाए ऐसा नियम था कि फांसी दिए जाने वाले व्यक्ति से उस की क्या इच्छा है? यह पूछा जाता था। भगवान् शंकर ने कहा कि जिसने मुझे फांसी का दण्ड दिया है उस से मिलना चाहता हूं। तेजस्वी शंकराचार्य राजसभा में उपस्थित हुए, कहा कि ऐ राजन्। मैं ईश्वर को मानता हूं। यदि वह न भी हो तो कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यदि मेरा ईश्वर हो तो कल्पना करो तुम्हारी क्या दशा होगी। ऋषि दयानन्द ईश्वरनिष्ठ थे। उन्होंने स्वयं कष्ट उठा कर लोगों को मार्ग दिखाया। इसलिए यदि आप चाहते हैं कि ईश्वर आप पर दया दृष्टि रखें तो उसकी प्रजा से प्रेम करो, यह सत्य का मार्ग है।

सृजन की बाधाओं से—

सीताराम

कलंकित निशाम्रों,
सुहासिन सजीली—
नवेली दुल्हन को
कफ़न मत उढ़ाम्रो;
सृजन से मिलन के
सुनहले सपन को
भरम मत बनाम्रो।

विकल वासनाम्रों,
उमंगती फसल पर
किरन की मचल पर
क़हर मत गिराम्रो;
म्रछूते जहन पर
नशीले जहर की
परत मत चढ़ाम्रो।

विषैली हवाम्रों,
स्वजन हैं सगे हैं—
परस्पर लड़ा कर
इन्हें मत मिटाम्रो;
सृजन के हवन की
सुहानी तपन को
जलन मत बनाम्रो।

पतित कल्पनाम्रों,
पतन की घिनौनी
म्रंधेरी गली को
चमन मत बताम्रो;
कली से भ्रमर के
पतित म्राचरण को
म्रधिक मत सराहो।

म्रसत् म्रास्थाम्रों,
विलासी सुरों के,
विनाशी सदन को
न नन्दन बताम्रो;
सितम पर पड़े
देश की म्रावरण को
न कह धर्म, गाम्रो!

गलत मान्यताम्रों,
प्रबल म्रजगरों की
पतित लालसा पर
सुमन मत चढ़ाम्रो;
हवस के बुतों की
रसीली गरज को
नियम मत बताम्रो।

म्रधम म्रात्माम्रों,
मनुज के निचोड़े
हुए रक्त को, मधु
बता पी न जाम्रो;
बिलखते नयन की
दलित के रुदन की
हंसी मत उड़ाम्रो।

ओमप्रकाश त्यागी

नैतिक शिक्षा पद्धति

नैतिकता राष्ट्रोन्नति का मूलाधार है—

किसी भी राष्ट्र की उन्नति राष्ट्रीय चरित्रबल पर आधारित होती है। चरित्र अथवा नैतिकता वह शक्ति है जो देश को सदैव प्रगति की ओर प्रेरित करती रहती है और साथ ही प्रगति के मार्ग में आने वाली आपत्तियों का डट कर सामना करने के निमित्त साहस, दृढ़ता व अपने सर्वस्व की आहुति देने की जहां शक्ति प्रदान करती है वहां नाना प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों के आने पर उन्हें राष्ट्र-हित में परित्याग करने की महती देन देती है। इस प्रकार नैतिक बल वह शक्ति है जिस के बल पर राष्ट्र असम्भव को भी सम्भव बनाने की सामर्थ्य रखता है। यह बात सर्वथा असम्भव है कि चरित्रवान् राष्ट्र उन्नति न करे।

राष्ट्र की भौतिक उन्नति ही नहीं अपितु उसकी एकता व सुरक्षा भी नैतिकता ही पर निर्भर करती है। चरित्रहीन राष्ट्र कदापि अपनी एकता व सुरक्षा को स्थिर नहीं रख पाते हैं। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार के विशालकाय राष्ट्र चरित्र बल के अभाव में चरित्रवान् छोटे से देश के सम्मुख किस प्रकार धराशायी ही नहीं हो गये अपितु शताब्दियों तक उसकी दासता की बेड़ियों में जकड़े पड़े रहे। उन्हें बाहर की शक्ति ने नहीं अपितु अपने ही देश की चरित्रहीनता ने पराजित करा दिया। इसलिए चरित्रबल ही वास्तव में किसी राष्ट्र की शक्ति होता है।

नैतिकता का शत्रु कौन ?

मानवीय व्यक्तिगत स्वार्थ ही राष्ट्रीय चरित्र-बल का शत्रु होता है। स्वार्थ व्यक्ति को समष्टिवादी के स्थान पर व्यक्तिवादी बना देता है। उसका मन, वचन, कर्म व नीतियां उसके स्वार्थ के साथ-साथ बदलती रहती है। स्वार्थान्ध व्यक्ति पशु समान होता है। जो अपने तक ही सीमित होता है। वह अपने हित के लिए दूसरों का अहित करने का आदी होता है। जब स्वार्थ की मात्रा अधिक बढ़ जाती है तो राष्ट्र-हित भी उसकी आंखों से ओझल हो जाता है और वह अपने हित के लिए राष्ट्र-हित को बेचने तक की नीचता करने में संकोच नहीं करता है।

स्वार्थ और परमार्थ की भावना ही दानव व देवता की पहिचान होती है। स्वार्थ की भावना ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों मानव अपने दैवी गुणों को छोड़ राक्षस बनता चला जाता है। और स्वार्थ का ज्यों ज्यों अभाव होकर परमार्थ की भावना का व्यक्ति में उदय होता जाता है त्यों त्यों वह दानव से देवता बनता चला जाता है। वास्तव में नैतिक बल रखने वाले सदाचारी व्यक्ति का ही दूसरा नाम देवता है।

गी त

जग में रहकर कर्मों में रत,
अपने अवगुण भी गुण लगते ।
हम जग में जो सुख-दुःख सहते,
उसको कर्मों का फल कहते,
पर अपने दुष्कर्म-कर्म का,
नहीं विवेचन कर हम जगते ।
है शैया सुपनों की सुख में,
कांटों की शैया है दुःख में,
ढोंग और पूजा के बल पर
नहीं दुःखों के ढेर सुलगते ।
सुख-दुख है इस जीवन का क्रम,
प्राणी के कर्मों का यह श्रम,
हमसे पाप-पुण्य गुण-अवगुण
नहीं कभी भी अरे विलगते ।

रमाकान्त दीक्षित

स्वार्थ परमार्थ मानव को ईश्वरीय देन :

पशु-पक्षी की भांति मानव में स्वार्थ जन्म सिद्ध होता है, परन्तु साथ ही उसके हृदय में परमार्थ भीछिपा हुआ होता है। इसके अतिरिक्त पशु-पक्षी प्यार और मानव में यह महान अन्तर होता है कि पशु-पक्षी जहां मां के पेट में ही निर्मित होकर आते हैं और मां के पेट से बाहर उनके जीवन अर्थात् उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, तो वहां मानव का अधिकांश जीवन व स्वभाव मां के पेट से बाहर बनता है। वह अपने जीवन का स्वयं निर्माता होता है। उसका अच्छा बुरा बनना उसके शिक्षण पर ही आधारित होता है। देवता या दानव बनना स्वयं उसके हाथ में होता है।

नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता :

व्यक्ति के स्वार्थ को परमार्थ में बदलना शिक्षा का एक प्रमुख अनिवार्य अंग होता है या होना चाहिये । इसके बिना शिक्षा आत्महीन होती है। शास्त्रों में लिखा है—"साक्षरा विपरीता राक्षसा भवन्ति" अर्थात् साक्षर व्यक्ति जब विपरीत हो जाता है तो वह राक्षस बन जाता है। चरित्र-हीनता ही साक्षर व्यक्ति को राक्षस बना देती है। शास्त्रों ने साक्षर व्यक्ति को ही राक्षस बनने का संकेत क्यों किया है अपढ़ के लिये क्यों नहीं कहा। इसका कारण यह है कि अपढ़ व्यक्ति बुरा होने पर भी उसकी बुराई करने की योग्यता, शक्ति व साधन सीमित होते हैं, परन्तु एक शिक्षित व्यक्ति जब बुराई करने की दिशा में अग्रसर होता है तो उसके पास बुराई करने की योग्यता, शक्ति व साधन अपरिमित होते हैं, वह फिर बुराई करने के लिये अन्धेरी रात व एकांत नहीं खोजता है अपितु अपनी बुद्धि के बल पर दिन-दहाड़े कानून की आड़ में बुराई के अनेक मार्ग खोज निकालता है। इसलिये नैतिक शिक्षा के बिना, शिक्षा देश के लिये अति ही घातक है। नैतिक शिक्षा विहीन शिक्षा देश में अन्याय, अत्याचार, शोषण, भ्रष्टाचार व षड़यंत्रों को जन्म देती है।

नैतिक शिक्षा का लक्ष्य :

नैतिक शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के स्वार्थ को परमार्थ में बदलना है। स्वार्थ के साथ परमार्थ की भावना भी मानव हृदय में होती है। बस इसी परमार्थ की भावना को ऊपर उठाना नैतिक शिक्षा का लक्ष्य है। वास्तव में स्वार्थ ही जब विशालता को प्राप्त हो जाता है तो वह पर-

मार्थ बन जाता है। अर्थात् जब व्यक्ति का स्वार्थ अपने से ऊंचा उठकर अपने स्त्री, बच्चों, परिवार, गांव, जिला प्रांत देश व समूची मानव जाति तक विस्तृत हो जाता है तो वह फिर अपनी ही उन्नति में अपनी उन्नति न देखकर सब की उन्नति में अपनी उन्नति अनुभव करने लगता है। बस इसी अवस्था या गुण का मानम में सृजन करना नैतिक शिक्षा का लक्ष्य होता है।

भौतिक ज्ञान विज्ञान नैतिकता उत्पन्न करने में असमर्थ :

क्या वर्तमान ज्ञान विज्ञान का शिक्षण मनुष्य में नैतिकता उत्पन्न नहीं कर सकता है। इस प्रश्न का उत्तर यही है कि भौतिक ज्ञान विज्ञान में व्यक्ति के स्वार्थ को परमार्थ में बदलकर उसे सदाचारी बनाने की क्षमता है ही नहीं। प्रेम, सेवा, दया, क्षमा अहिंसा आदि नैतिकता के गुण बुद्धि के नहीं अपितु हृदय के गुण हैं। भौतिक ज्ञान विज्ञान में मानव के बौद्धिक विकास की क्षमता है। हृदय की शक्तियों के विकास करने की उसमें क्षमता है ही नहीं। हृदय की शक्तियों का विकास करने की क्षमता केवल अध्यात्मिक शिक्षण अथवा नैतिक शिक्षण में ही है।

नैतिक शिक्षण का प्रकार :

नैतिक शिक्षण देने के प्रमुख दो ही उपाय हैं अर्थात् कान और आंख। नकल करना मानव का स्वाभाविक गुण है। इसकी दूसरी यह विशेषता है कि जिन बातों को यह बार-बार देखता है, सुनता है, बोलता है, करता है वह धीरे धीरे इसके जीवन का अंग बन जाते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व वास्तव में इन्हीं संग्रहीत आदतों का एक समूह मात्र होता है। पढ़-अपढ़ दोनों ही प्रकार के व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थितियाँ व शिक्षण के अनुसार अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर नित्य अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते रहते हैं। इसलिए नैतिक शिक्षण के लिए यह अनिवार्य है कि शिक्षार्थी ऐसे स्थान व वातावरण में ही रहे जहां उन्हें अच्छी बातें ही देखने, व सुनने को मिलें अन्यथा स्कूल कुछ घण्टों का नैतिक शिक्षण अधिक लाभकर सिद्ध न हो सकेगा। अधिक समय के गन्दे वातावरण का कुप्रभाव स्कूल का क्षणिक शिक्षण दूर कर सकेगा इसमें सन्देह है।

गीत

विष और अमृत से भरा
जिन्दगी है एक प्याला।
अपनी भूल खला करती है,
बाती रोज जला करती है,
असह्य जलन के साथ में,
चांद सूरज-सा उजाला।
शापों में बरदान पगे हैं,
कंटक से कलि-मान जगे हैं,
असह्य चुभन के साथ में,
फूल-सी मुस्कान-माला।
भादों का ताप झुलसता है,
वर्षा में आप विहंसता है,
असह्य तपन के साथ में,
बादलों ने शिविर डाला।
जीवन का रूप उतरता है,
कारक का रूप सुधरता है,
असह्य घुटन के साथ में,
प्राण का लहरा दुशाला।

रमाकान्त दीक्षित

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली :

इसके लिए शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली ही श्रेष्ठ है। सरकार को चाहिए कि ९ वर्ष के पश्चात् बच्चों को गुरुकुल या रेजीडेंसियल स्कूल में भर्ती करें और उनके रहने, खाने-पीने व पढ़ने की व्यवस्था करें। शिक्षा निःशुल्क ही होनी चाहिए। इसके लिए जनता पर शिक्षा शुल्क लगाना चाहिए। इस शुल्क को जनता सहर्ष देगी।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के द्वारा दस-बारह वर्ष में ही एक पूर्ण स्वस्थ चरित्रवान् राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। जातिवाद, प्रान्तवाद व छूत आदि सामाजिक कुरीतियों को भी इस पद्धति से दूर किया जा सकता है।

कान के द्वारा नैतिक शिक्षण :

अच्छे स्थान व वातावरण के पश्चात् कान के द्वारा नैतिक शिक्षण देते समय निम्न तीन बातों का ध्यान रखना अनिवार्य होगा अर्थात् :—

१. नैतिकता का लाभ व अनैतिकता की हानियां समझाना।
२. ऐतिहासिक आदर्श नैतिक जीवन उपस्थित करना।
३. नैतिकता के गुण-गान करना।

नैतिकता-अनैतिकता की लाभ-हानियां :

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने हित की बात को तुरन्त ग्रहण कर लेता है, और अहित की बात का परित्याग कर देता है। अज्ञान के कारण ही वह बहुधा हित को अहित और अहित को हित समझता रहता है। बस इस अज्ञान के पर्दे को हटाकर शिक्षार्थी को उसका सही हित जब समझा दिया जायेगा तो वह स्वतः उसे ग्रहण कर लेगा। उदाहरणार्थ बहुधा बच्चों को पढ़ाई की अपेक्षा खेल प्रिय होता है। परन्तु जब वह पढ़ाई के महत्त्व को जान जाता है तो फिर वह खेलों को अधिक महत्त्व नहीं देता है। इसी प्रकार जब व्यक्ति को उसके क्षणिक व छोटे स्वार्थ के सम्मुख बड़े स्वार्थ को रख दिया जाता है तो वह सहर्ष अपने छोटे स्वार्थ का परित्याग बड़े स्वार्थ के लिये कर देता है।

यह बात ध्रुव सत्य है कि चरित्र हीनता में व्यक्ति का क्षणिक व छोटा स्वार्थ ही निहित होता है, और इससे उसके महान स्वार्थ का अहित हो जाता है। इस तथ्य को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से सिद्ध किया जा सकता है। उदाहरणार्थ काम वासना की पूर्ति में मानव क्षणिक आनन्द की प्राप्ति करता है, परन्तु ब्रह्मचर्य के द्वारा वह स्थायी स्वास्थ्य, ओज तेज, बल व आनन्द की प्राप्ति करता है। यदि गुरु इस रहस्य को समझाने में समर्थ हो जाता है, तो फिर शिक्षार्थी निश्चित रूप से ब्रह्मचर्य मार्ग को अपना लेता है।

समय और अपने वचन का पालन किस प्रकार मानव की प्रगति में सहायक हैं इस तथ्य को समझाना बड़ा सरल है। यूरोपादि देश आज इन्हीं दो गुणों के बल पर संसार के मुखिया बने हैं आदि प्रमाणों से विद्यार्थी को समय और वचन के महत्त्व का समझाना चाहिये।

नैतिक शिक्षण के प्रचार में आध्यात्मिक शिक्षण बड़ा ही प्रभावशाली उपाय है। मैं कौन हूं ? यह दुनिया क्या है ? मैं यहां क्यों आया हूं ? मेरा लक्ष्य क्या है जीवन मरण के बन्धन का कारण क्या

है। परमानन्द अथवा मोक्ष की प्राप्ति में अनैतिकता किस प्रकार बाधक है? आदि प्रश्नों के उत्तर समझ लेने पर मानव के हृदय में स्वतः नैतिकता के लिये प्यार और अनैतिकता के लिये घृणा उत्पन्न हो जाती है।

ऐतिहासिक आदर्श नैतिक जीवन :

उपदेश की अपेक्षा विद्यार्थी के जीवन पर आदर्श जीवन का बड़ा शीघ्र प्रभाव पड़ता है। समाज में बड़ा बनना व सम्मान प्राप्त करना लगभग सभी व्यक्ति चाहते हैं। बड़े व्यक्तियों के बड़प्पन का रहस्य निश्चित रूप से उनके किसी न किसी नैतिक बल में ही होता है। अतः इतिहास के पत्रों से ऐसे महापुरुषों के आदर्श जीवनों को प्रस्तुत किया जा सकता है, जो नैतिकता के विभिन्न गुणों के कारण महानता को प्राप्त हुये। इस प्रकार के महापुरुष सभी देशों, समाज व वर्ग में भरे पड़े हैं। अतः नैतिकता के उत्थान में सभी महापुरुषों के जीवनों का लाभ उठाना चाहिये, परन्तु जहां तक सम्भव हो अपने ही देश के महापुरुषों को प्रमुखता देना चाहिये क्योंकि इससे नैतिकता के साथ साथ विद्यार्थियों में देशभक्ति का भी जागरण होता है।

नैतिकता के गुणगान :

नैतिकता के गुणों का लगातार गान करने से उन गुणों का धीरे-धीरे जीवन में समावेश होता जाता है। गान वह कला है जो सीधे हृदय पर चोट करती है, और तुरन्त उस पर अधिकार जमाती है। भावुकताप्रिय व्यक्तियों को गान के द्वारा सही मार्ग पर लाना बड़ा ही सरल व प्रभावशाली उपाय है। इसलिये नैतिकता के विभिन्न गुणों पर अच्छे सरल भाषा में मधुर गानों का निर्माण कर उनका उपयोग होना चाहिये।

आंख के द्वारा नैतिक प्रचार :

आंख प्रचार का सर्वोत्तम साधन है। इसके द्वारा मानव जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है वह कान आदि अन्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा नहीं होता है। इसलिये नैतिक शिक्षण में अधिक से अधिक आंख के मार्ग का ही उपयोग करना प्रभावशाली रहेगा। इसके लिये निम्नलिखित बातें हितकर रहेंगी।

१. आदर्श शिक्षक
२. आदर्श चित्र कवितायें।
३. चल चित्र।

आदर्श शिक्षक :

ज्योति से ज्योति जलती है। बुझा हुआ दीपक कदापि दूसरे दीपक को ज्योति प्रदान नहीं कर सकता है। इसलिए नैतिक गुणों का विकास चरित्रवान् शिक्षकों के द्वारा ही होना सम्भव है। इसलिए सर्वप्रथम शिक्षा संस्थाओं में अध्यापकों के रहन-सहन, बोल-चाल आदि का सुधार होना अनिवार्य है। उनके जीवन का प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ना अनिवार्य है। इसलिये विद्यार्थियों को नैतिकता का शिक्षण देने से पूर्व शिक्षकों में नैतिकता के प्रति आस्था व उनमें नैतिकता के गुणों का विकास होना अत्यावश्यक है अन्यथा समस्त प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो जाता है।

शिक्षकों में भी कन्या पाठशालाओं की अध्यापिकाओं का सर्वप्रथम सुधार होना चाहिए क्योंकि राष्ट्रनिर्माण सर्वप्रथम माता की गोद में ही होता है। माता

के द्वारा बिगाड़े राष्ट्र को कोई भी बनाने में असमर्थ रहता है। अतः जहां राष्ट्र की भावी माताओं का जीवन बनना है वहां नैतिकता के शिक्षण पर अपेक्षाकृत अधिक बल देना चाहिए।

चित्र :

स्कूलों में इस प्रकार के चित्र होने चाहिए जिन्हें देखते ही मानव के हृदय में चरित्र-निर्माण की ओर रुचि उत्पन्न हो। नैतिकता के गुणों की विशेषताओं को लेकर अच्छी-अच्छी कवितायें भी स्कूल की दीवारों पर टंगी रहनी चाहिये जिन्हें पढ़कर बच्चों का ध्यान उस ओर आकर्षित हो।

चल-चित्र :

आदर्श चरित्र को उपस्थित करने वाले चल-चित्रों का प्रदर्शन विद्यार्थियों के जीवन पर जादू जैसा प्रभाव करता है। नैतिकता के अन्य प्रचारों को वह भले ही स्वीकार न करे या उस पर उसका प्रभाव न पड़े, परन्तु चलचित्र के आकर्षण व प्रभाव से उसका बचना सर्वथा असम्भव है। अतः नैतिकता के प्रचार में इसका उपयोग सर्वोत्तम सिद्ध होगा।

परीक्षा में नैतिकता को स्थान :

नैतिकता के प्रचार व प्रसार के लिए आवश्यक है कि इसका परीक्षा में अनिवार्य स्थान हो। बौद्धिक परीक्षा के साथ आचरण परीक्षा अवश्य होनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक कक्षा के शिक्षक को अधिकार हो कि वह वर्ष भर विद्यार्थी के आचरण को देखकर उसके नैतिक स्तर के अनुसार अंक दे जो उसकी परीक्षा की श्रेणी बनाने में सहायक सिद्ध हो। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी परीक्षा में अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के लिए नैतिक गुणों को अपनाने में प्रयत्नशील रहेगा।

चरित्रवान् बच्चों का सम्मान :

शिक्षा संस्थाओं में चरित्रवान् विद्यार्थियों को विशेष रूप से सम्मानित करना चाहिए। दुर्भाग्यवश मानव का मूल्य व सम्मान उसकी धन-सम्पत्ति में रह गया है। यदि आज मनुष्य का मूल्य उसके चरित्र में आंका जाने लगे, तो समूचे समाज में चरित्र का बोल-बाला हो जाय। वास्तव में व्यक्ति का मूल्य उसके चरित्र में ही होता है। जब से इसका मूल्य इसके पैसे में आंका जाने लगा है तभी से समाज भ्रष्टाचारी बन गया है।

नैतिक शिक्षा के मूल-स्तम्भ :

नैतिक शिक्षा के मूलाधार संसार के सभी देशों, समाजों व मतों में लगभग समान ही हैं। इनके प्रयोग व प्रकार में भले ही भेद हो, परन्तु इनकी मान्यता सर्वसम्मत है। अतः भारत की धर्मनिपेक्ष नीति का सम्मान करते हुए शिक्षा संस्थाओं में नैतिकता के निम्न मौलिक सिद्धान्तों का प्रचार हो ही सकता अर्थात्

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान॥

नैतिकता के उपर लिखित दस यम-नियमों का प्रचार यदि समुचित रूप से किया जाय तो यह बात असम्भव है कि विद्यार्थियों में चरित्र, अनुशासन व मानवता का उदय न हो, अतः इन का प्रचार पूरे बल से करें।

—योगीराज जगन्नाथ 'पथिक'

प्रभु प्राप्ति का मार्ग

प्रभु के चरणों में वर्षों बैठ कर साधना करने वाले विद्वान् और तपस्वी लेखक का यह लेख अगर हम मन के नेत्र खोल कर पढ़ लें तो हमारा यह जीवन सचमुच सफल हो जाएगा। —संपादक

●

जीवमात्र ही प्रेरित और प्रवृत्त है कर्म में क्यों? दुख निवृत्ति और सुखप्राप्ति की कामना ही से तथा वे लौकिक और पारलौकिक समस्त व्यापार कर्म·साधनाएं सब ही का केवल मात्र उद्देश्य है **'सुख-प्राप्ति'**। जन साधारण तो दुःख निवृत्ति को ही सुख समझते हैं। इसी कारण वे शारीरिक आवश्यकताओं तथा न्यूनताओं की पूर्ति को ही लक्ष्य समझते हैं और दिन-रात इन्हीं में रत हैं; दयनीय जन वास्तविक सुख की ओर देख नहीं पाते इसी कारण दुःख का अत्यन्ताभाव-नाश हो पाता और निरन्तर प्रयत्नशील रहते हुए भी कोल्हू के बैल के सदृश वहीं के वहीं अर्थात् दुःखी ही बने रहते हैं।

जैसे एक यात्री अपना भार सिर पर वा कन्धों पर उठाए बद्रीनारायण की पर्वतीय यात्रा पर जा रहा है, मार्ग में किसी पड़ाव-चट्टी पर आकर विश्राम के लिए जब अपना भार उतार कर रख देता है तो उस समय भार उतरने तथा मार्ग श्रम-थकावट के मिट जाने से सुख तो अवश्य अनुभव होता है परन्तु इतने मात्र से ही उसकी भूख प्यास की व्यथा का निवारण नहीं होता, क्षुधा पिपासा की निवृत्ति के लिए तो उसे अपने श्रम द्वारा उपार्जित भोजन सामग्री को जुटाना पड़ेगा तभी तृप्ति होगी। इसके विपरीत पड़ाव पर पड़े रहने से तो व्याकुलता बढ़ेगी ही। ठीक इसी प्रकार लौकिक तथा मानसिक सद्व्यवहार से—इन्द्रिय दमन तथा संयम से कुछ सीमा तक दुःख घट तो जाता है और सुख प्रतीत होता है, परन्तु स्मरण रहे यह सुख "दुःख-निवृत्ति" का है, उपलब्धि का नहीं पर हां दुःख निवृत्ति के लिए साधनभूत है, सहायक है। बिना सद्व्यवहार के सुख को पाने की योग्यता नहीं होती यह तथ्य सत्य है।

ऋषियों ने इस सद्व्यवहार को यम नियमों का स्वरूप देकर समाधि का बहिरंग साधन, वाह्य अंग माना है, क्योंकि यम नियम हमारे बाह्य मोटे व्यवहार के नियामक हैं। इनमें दक्ष हो जाने पर भी मनुष्य जब तक ध्यानादि के अन्तरंग साधनों द्वारा मन को समाहित नहीं करता तब तक न तो उसे प्रकृतिगत सूक्ष्म राग का प्रत्यक्ष होता है न हृदयग्रन्थि का भेदन, न ऋतम्भरा की प्राप्ति, न स्वरूपस्थिति, न आनन्द रूपी आत्मा के भोजन की प्राप्ति ही होती है स्थिरता के साथ। तथा

यत्किंचित् क्षोभ बना ही रहता है । दब भले जाए अत्यन्ताभाव नहीं होता यथा—
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते गीता २।५

अनेक अल्पज्ञ-अज्ञ-अबोध मनुष्य तो जगत की इस प्रत्यक्ष वर्तमान अवस्था जाग्रत् के सुख के अतिरिक्त, इससे भिन्न आत्मा की सत्ता को न जानते न ही मानते हैं। वे केवल अपने देह तथा मन की कामनाओं, उदरपूर्ति और प्राण की तृप्ति को ही निज लक्ष्य मान बैठे हैं और अपनी कतिपय विलासी आवश्यकताएं घटाने, कामनाएं हटाने तथा जड़ और चेतन जगत् के प्रति कुछ सेवाभाव, परोपकार वा सद्व्यवहार करने मात्र में अपना श्रेय समझते हैं और इसी कारण वे लोग इस लधु जगत् देह मण्डल के सुधार **'जीवात्मा तत्व'** से अनभिज्ञ हैं और अनभिज्ञ ही रहते हैं क्योंकि अपनी धारणा के अनुसार प्रयत्न नहीं करते जिस से आत्मा का साक्षात् हो।

देहादि से भिन्न कोई अन्य चेतन सत्ता "आत्मा" नहीं है, ऐसी धारणा मिथ्या तथा बालोचित है । बालकों को जैसे कि बालकपन में बहलाने और युवावस्था के योग्य बनाने के लिए शिक्षा देने के भाव से अनेक प्रकार के खिलौने दिए जाते हैं, और बालक भी उन खिलौनों को सत्य नित्य रहने वाले अपना सर्वस्व मानकर उनके टूटने, फूटने, बिगड़ने से अति दुखी होते हैं, शोकातुर होते हैं, जब तक कि नया न मिले प्रसन्नता मुख पर नहीं आती । परन्तु बाल्यावस्था के ढलते ही और यौवन के पदार्पण करने पर वे ही बालक निजेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक अपने खिलौने अन्य बालकों को दे देते हैं— एवं बालबुद्धि अज्ञजीव अपने अबोध के कारण इस जगत् के प्रपंच को ही सत्य मानकर अपना लक्ष्य मानकर बालकवत् स्त्री-पुत्र-मित्र-बन्धुबान्धवों तथा सांसारिक पदार्थों के खिलौनों में ही उलझे रहते हैं और उन का ध्यान इस बालकपने से हट कर उससे उच्चावस्था आत्मा तथा परमार्थ तत्त्व चिन्तन की ओर जाता ही नहीं । ऐसे ही व्यक्तियों के विषय में आचार्य ने कठोपनिषद में कहा है—

**न साम्परायः प्रतिभावित बालं प्रमाद्यन्तं वित्त मोहेन मूढम्
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे** कठ०—२य वल्ली-६ ।

इस उपनिषद् वाक्य पर श्रद्धा करके तथा अपने निजी अनुभव से भी इस स्थूल देह में, इस देह से भिन्न चेतन सत्ता आत्मा का अनुशीलन तथा निश्चय करना उचित है । दुःख दो कारणों से उत्पन्न होता है-- और उन कारणों के मिटने पर मिट जाता है। १—कारण है अहंकार-अस्मिता अर्थात् देह में अहंभाव कि देह की आत्मा है इस से भिन्न कोई आत्मा नहीं । २—दूसरा है **ममत्व-ममता** अर्थात् देह की न्यूनता को पूर्ण करने वाले तथा देह को सुख पहुंचाने वाले पदार्थों को अपना मानना; ये दोष ज्ञान की न्यूनता, तम से उत्पन्न होते और सत्त्व ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं।

चित्त उत्पन्न होता है, अपने मूल कारण अस्मिता से, अहंकार से **'निर्माण चित्तान्यस्मिता मात्रात्** तथा च चित्त के बाह्य संसार में संलग्न होकर विस्तृत होने से फैलने से, आसक्त होने से अहंभाव पुष्ट होता है जो दुःख का वर्धक है। इसके विपरीत यदि चित्त मन को, जो

बाहर जाने से दुःख उत्पन्न करता और ज्ञान घटाता है अज्ञान बढ़ाता है; उसे यदि आत्मचिन्तन तथा ध्यान समाधि द्वारा आत्मा में लीन कर दिया जाए तो उस विलीनता से दुःखों के मूल संस्कारों का नाश होकर सुख तथा आनन्द का अपूर्व उद्‌भाव होता है—एक सागर सा उमड़ पड़ता है।

यह जीव जब अपनी "**चितिशक्ति-आत्मतत्व**" सम्पत्ति को पा लेता है तो भगवान् के पा लेने की पूर्ण योग्यता उसमें आ जाती है, और एक बार पा लेने पर जीव का प्रत्येक क्षण उस परम शक्ति जगदाधार, संसार के सुधार की स्मृति में ही व्यतीत होता है।

प्रारम्भिक अवस्था में तो विचार द्वारा ही इस धारणा को प्रतिपल दृढ़ करते रहना चाहिए कि—मैं अमृत पुत्र हूं, चेतन ज्ञान सम्पन्न देह-प्राण मन-बुद्धि से तथा दृश्य जगत् से सर्वथा भिन्न हूं, यह सब दृश्य उस भगवान् तक पहुंचने का साधन '**भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**' जो सूर्य चन्द्र पृथ्वी, पाताल, अन्तरिक्ष तथा इस तारा मण्डल और इससे भी परे दृश्य अदृश्य जगत् का उत्पादक-पालक-नियामक तथा संहारक है; स्वभावतः परिपूर्ण कालातीत-सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान्-सदा सर्वथा एक रस से विद्यमान, **भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः, भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचम। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति**' आदि-आदि वचन श्रुति कह रही है। वह भक्तवत्सल-दयामूर्ति करुणानिधि-तारक और त्राता है—मैं उसी का पुत्र हूं वह पिता माता और सखा परम सुखदाता है। इसी प्रकार की धारणा से तथा धारणा की दृढ़ता द्वारा होने वाले अनुभव से मल आवरण विक्षेप दोष मिट जाएंगे और एक अकथनीय शान्त आनन्द रस पूर्ण उत्साह युक्त आत्म विस्मृति की अवस्था का निरन्तर अनुभव होने लगेगा।

मनुष्य जब साधारण तुच्छ से व्यक्ति के सन्मुख कोई कुचेष्टा करने से घबराता तथा लज्जा अनुभव करता है तो सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी-सर्वशक्तिमान्-भगवान् की सार्वत्रिक उपस्थिति में जो कि न्यायानुकूल सर्वकर्मफलदाता है, जिस से हृदय का गुह्यतम भाव भी नहीं छिप सकता तथा जिसके न्याय में भूल-भ्रम की आशंका की सम्भावना भी नहीं हो सकती—उसकी व्यापकता के ज्ञान में फिर पाप की भावना ही कैसे होगी—यह मनसा परिक्रमा के मन्त्रों का सारांश है जो पाप कर्म की निवृत्ति करता है, यहीं से दुःखों की निवृत्ति होगी—हो जाएगी और हमारे कर्मकाण्ड का उद्देश्य भी पूर्ण हो जाएगा इसमें संदेह नहीं।

इसके आगे फिर विचारधारा स्वतः बहने लगेगी और मन में उठने वाले अनेक प्रश्नों का, आशंकाओं का, कि यह शासिका शक्ति जगत् का निर्माण कैसे करती है? पालन किस प्रकार करती है? संहार किस किस रुप से करती है? कर्मफल कैसे देती है? इसका आदि अन्त क्यों नहीं? हम इसकी अधीनता में क्यों रहें? इत्यादि प्रश्नों के तर्क कुतर्क के उत्तर तथा समाधान स्वयं होते रहेंगे और जो कुछ इस स्थूल बुद्धि से नहीं सोचा जा सकता और इस बुद्धि में नहीं घुसता वह सब बाह्य तथा आन्तरिक सृष्टि का रहस्य स्पष्ट सन्मुख आता जाएगा पूर्वापर नियमों का ज्ञान आभासित होगा, वेद का विज्ञान तथा अन्य बहुत कुछ अन्तःकरण में प्रत्यक्ष साक्षात्

होगा जिसकी इस समय कल्पना भी नहीं हो सकती।

यस्मिन् ऋचः यजूंषि प्रतिष्ठितः रथ नाभा विवाराः

यस्मिन्श्चितं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

वेद ने भी पूर्व वर्णित शिव संकल्प का यह फल तो बताया है। यहां आकर ज्ञान पूर्ण हो गया, तम अज्ञान का नाम भी नहीं रहा, कर्तव्य की इतिश्री हो गई, ज्ञातव्य जान लिया, अज्ञान रूपी आदित्योदय से रात्री के अन्धकार के सब भय भाग गए--अब सब ओर प्रकाश ही प्रकाश जगमगाने लगा—

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्
चित्रं षकेता जनिष्ट विभुवाः;

यथा प्रसूता सविता सवाय रात्र्योष योनि मारैक।

यहां ज्ञान काण्ड भी पूर्ण हुआ, अब केवल उपासना शेष रही। तो अब जबकि कर्म का बन्धन ही न रहा, दुःख का कारण ही मिट चुका, सृष्टि का रहस्य भी खुल चुका, तो कोई भी कर्म-क्रिया-आचरण सृष्टि नियम के विरुद्ध होना ही कैसे? होगा ही क्यों? संकल्प विकल्प तो रहे ही नहीं। वे तो वैतरणी में पीछे वहा चुके। अब तो शुद्ध पवित्र होकर स्नेह-दया-वात्सल्यमयी जगत् जननी की स्नेह सिकता अंक में आ बैठे सर्वांगीण समर्पण हो चुका।

सपुर्दम बतो मायए खेशरा
तु दानी हिसाबो कमोबेशरा।

ऐसी दृढ़ भावना से कार्य सिद्धि होती है--

निकल ही जाएगी इक रोज हसरते पाबोस
पड़े रहो दरे जानां पै संगे दर की तरह॥

बस नमक का ढेला समुद्र में घुलकर जब अपना नाम रूप भी खो बैठा, तो भला उसकी पूर्वावस्था का, और इस परम गुह्यतम रहस्य का वर्णन भी कौन और कैसे करेगा?

यही तो है—अन्तिम उद्देश्य, परम लक्ष्य, परम पुरुषार्थ, और है प्राप्तव्य-कर्म की इतिश्री समाप्ति।

वे धन्य हैं जिन्हें यह अवस्था देह त्याग देने से पूर्व ही जीवन काल में ही मिल गई—**या वा एतदक्षरं विदित्वा स्माल्लाकात् पैयि सः ब्राह्मणः वृहदारण्यक**

चार बातें

१. चार पर दया करो—
स्त्री पर, रोगी पर, राह भटकने वाले पर एवं शरणागत पर।

२. चार बनो—
नामी, सुशील, सत्यवादी, परिश्रमी।

३. चार चीज़ों से बचो—
दुर्व्यसनों से, अपनी प्रशंसा से, दूसरों की निंदा करने से, दूसरों के दोष निकालने से।

४. चार पर विजय प्राप्त करो—
इन्द्रियों पर, मन पर, वाणी पर, शरीर पर।

५. चार पर दया न करो—
स्वयं पर, अन्याय पर, आलस्य पर, उद्दण्डता पर।

६. चार न बनो—
कृतघ्न, अभिमानी, मायावी, दुराग्रही।

७. चार में जल्दी करो—
भजन में, दान में, सेवा में, अध्ययन में।

वैदिक भक्तिवाद की रूपरेखा

—जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"—

१—ईश्वर और उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना वैदिक-धर्म का मूल आधार है। वैदिक-धर्म के अनुसार मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार से अवस्थित किया गया है कि मनुष्य जीवन के प्रत्येक आवश्यक कर्त्तव्य, प्रत्येक उचित कामना और प्रत्येक शुभ भावना ने एक प्रकार से ईश्वरोपासना का ही रूप धारण कर लिया है।

२—वैदिक-धर्मानुयायी जनों का जीवन ईश्वरार्पित होता है, अर्थात् वे अपने जीवन में ईश्वर के आदेशों की पूर्त्ति के लिए अपने प्राण-पण से प्रयत्न करते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं, ईश्वर को प्राप्त करने, और उसे प्रसन्न करने के लिए ही करते हैं। उनके जीवन के सभी शुभकार्य ईश्वर के भरोसे पर आरम्भ होते है, ईश्वर की कृपा से ही सफल होते हैं। उनके प्रत्येक शुभकार्य का प्रथमचरण तो ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना और सहाययाचना स्वरूप ही होता है।

३—स्तुति, प्रार्थना, उपासना, आराधना, भक्ति, पूजा आदि-आदि ये कई शब्द इस प्रकार के हैं, जो कि उपासना-कार्यों के लिये बहुत अधिक प्रचलित हैं। इन शब्दों के अपने-अपने पारिभाषिक और यौगिक पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र अर्थों के होने पर भी, इन सभी में एक प्रकार की आर्थिक समानता भी विद्यमान है। उस समानता के आधार पर इन शब्दों को पर्यायवाची भी माना जा सकता है। कदाचित् यही कारण है कि भक्तिवाद के सभी आचार्यों ने इन शब्दों के प्रयोग के विषय में कोई निश्चित-संकुचित नियम न बना कर, उपासकों को इनके यथारुचि, यथामति व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी है।

४—संसार के सभी आस्तिक मतों में ईश्वरोपासना को मुख्य स्थान दिया गया है। सभी आस्तिक मत इस विषय में एकमत हैं कि ईश्वरोपासना के अनुष्ठान अवश्य किये जायें, और नियमपूर्वक किये जायें। उनका परस्पर मतभेद यदि है, तो इस विषय में है कि ईश्वरोपासना किस प्रकार की जाये? मूर्तिपूजक, पुस्तक-पूजक, गुरु-पूजक, कब्र-पूजक और लीडर-पूजक भी एक विशेष प्रकार के आस्तिक ही होते हैं। यह तो हम प्रतिदिन ही देखते हैं कि मूर्तिपूजक लोग अपनी-अपनी मूर्तियों के अर्चन-पूजन आदि में निराकारवादियों की अपेक्षा बहुत अधिक उत्साही और व्यस्त होते हैं।

५—इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि मूर्तिपूजा के अवैदिक होने पर भी मूर्तिपूजकों आदि को यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के पालन, आचरण, अनुष्ठान और अभ्यास आदि के द्वारा ठीक वे ही सब लाभ

प्राप्त होते हैं जोकि निराकार ब्रह्म के उपासकों को होते हैं। उपासना कर्म में यदि कोई यम, नियम आदि योग के आठ अंगों के अनुष्ठान और प्रतिपालन की उपेक्षा करता है,तो वह उपासना कर्म के उच्चतर लाभों से सर्वथा ही वंचित रह जाता है।

६—जो लोग नास्तिक हैं, और आस्तिकों के समान ईश्वर की सर्वोपरि, नित्य स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते, वे भी अपने-अपने गुरुओं, तीर्थंकरों, बुद्धों, महापुरुषों, नेताओं, आचार्यों, ग्रन्थों, कल्पित देवों वा तत्त्वों आदि-आदि की मान्यता, स्तुति प्रार्थना, उपासना, पूजा, आराधना, आरती, दर्शन, सत्कार, धूप-दीप आदि-आदि कर्म लगभग उसी प्रकार से करते हैं जिस प्रकार से कि साकारवादी अथवा निराकारवादी ईश्वरोपासक करते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि मनुष्य हृदय स्वभाव से ही उपासना प्रिय है।

७—वैदिक धर्म संसार की पहेली का समाधान "त्रैतवाद" के आधार पर करता है : त्रैतवाद के अनुसार—ईश्वर,जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि पदार्थ माने जाते हैं। ये तीनों अनादि होने पर भी अपने-अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार परस्पर भिन्न-भिन्न हैं।

८—यथा—

(१) ईश्वर—सत्+चित्+आनन्द=सच्चिदानन्द स्वरूप है। अर्थात्

(क) ईश्वर है।

(ख) ईश्वर चेतन है।

(ग) ईश्वर आनन्दस्वरूप भी है।

(२) जीव—सत्+चित्=सच्चित् है। अर्थात्—

(क) जीव है।

(ख) जीव चेतन है।

(३) प्रकृति—सत् है। अर्थात् प्रकृति है।

९—ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् इत्यादि अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त है, एक है, वही सृष्टि का उत्पादक, प्रतिपालक, नियामक और संहारक भी है।

१०—जीव अनन्त हैं। जीव स्वरूप से अणु और स्वभाव से अल्पज्ञ है। हां किसी निमित्त विशेष से अधिक ज्ञान प्राप्ति एवं आनन्द की प्राप्ति वा उपभोग का सामर्थ्य भी जीव में है। जीव शब्द का व्यवहार यहां जीव-जाति के रूप में किया जा रहा है। उपासना-धर्म के अनुष्ठान में सभी उपासकों को "प्रभु-दर्शन" से पूर्व आत्म-दर्शन की सिद्धि भी अवश्य ही प्राप्त करनी होती है। इसका अभिप्राय इतना ही है कि उपासक अपने-अपने शरीर से भिन्न दिव्य और वास्तविक सत्ता को जाने। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख और दुःख ये जीव के निशान हैं। जीव को ही आत्मा वा जीवात्मा भी कहते हैं।

११—जीवात्मा अपने पूर्वजन्मों के कर्मफलों के उपभोग तथा नये कर्मों के अनुष्ठान अर्थात् नई कमाई करने के लिये योनि में आया करता है। कर्म-फल सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य-योनि को उभय योनि कहते हैं। इसमें पूर्वजन्मों के संचित-कर्मों का फल

भोग भी होता है, नई कमाई भी पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष आदि अन्य सब योनियां—भोग-योनियां कहलाती हैं। उनमें नई कमाई की प्रथम तो कोई सम्भावना ही नहीं है, यदि है, तो बहुत कम है। प्रत्येक छोटे या बड़े शरीर का उपभोक्ता जीव तो एक ही होता है, जो कि अभिमानी जीव कहलाता है। हां, किसी एक बड़े शरीर के आश्रय से अन्य जीवों के छोटे शरीर भी रह सकते हैं जैसे कि पेट के कीड़े या सिर की जुएं। ऐसे पर शरीर आश्रित शरीरों वाले जीवों को अनुशेयी जीव कहते हैं।

१२—सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति के ये तीनों गुण और स्वयं प्रकृति भी आंखों से नहीं देखे जा सकते। जो प्राकृतिक जड़ पदार्थ हम देखते हैं, वे तो प्रकृति के नानाविध संघात वा विकार ही हैं। इस सृष्टि को उत्पत्ति में यह प्रकृति उपादान कारण है, ईश्वर निमित्त कारण। सृष्टि की उत्पत्ति जीवों के लिए हुई है, और होती है।

१३—त्रैतवाद की निष्पत्ति यह है कि ईश्वर ने, जीवात्माओं के लिए, प्रकृति से इस सृष्टि की रचना की है।

१४—जब किसी जीवात्मा को अविवेक योग प्राप्त होता है, तब उस का बन्ध आरम्भ हो जाता है, जो कि उसको सहस्रों वर्षों तक नानाविध योनियों में घुमाता रहता है। सौभाग्य से जब कभी मनुष्य-योनि प्राप्त होने पर किसी जीवात्मा को विवेक योग प्राप्त होता है, तब वह मुक्त हो जाता है और बहुत अधिक काल तक मोक्ष सुख को भोगता रहता है। क्योंकि मुक्ति की अवधि बहुत लम्बी होती है, इसलिए उसके लिए उपचार से "अनन्तकाल" पद का प्रयोग भी होता है। मुक्ति की अवधि पूर्ण होने पर नये कर्म करने के लिए पुनरपि किसी शरीर में आया करता है।

१५—जीवात्मा को अविवेक योग की प्राप्ति अल्पज्ञतावश होती है। बन्ध के आरम्भ होते ही अविद्याजन्य दुःखों वा दुष्परिणामों का आरम्भ भी हो जाता है। त्रिविध ताप अर्थात् १—आध्यात्मिक दुःख, जो कि अपने आन्तरिक कारणों से ही उत्पन्न होते हैं, २—आधिभौतिक दुःख जो कि किसी प्राणी को अन्य प्राणियों से प्राप्त होते हैं, और ३—आधिदैविक दुःख जो कि अतिवृष्टि, अनावृष्टि हिमपात, भूकम्प आदि से होते है, आरम्भ हो जाते हैं।

१६—अविवेक-योग से बन्ध और बन्ध से ताप-वृद्धि होने पर जीवात्मा सुख की कामना करने लगता है। नानाविध दुःख परम्पराओं से छुटकारा प्राप्त करना ही जीवात्मा का परम-धर्म वा चरम-लक्ष्य बन जाता है। जब दुःखों की तीव्रानुभूति होने लगती है, तब दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने के प्रयास भी आरम्भ हो जाते हैं। सुखाभिलाषा उत्कट रूप धारण कर लेती है।

१७—प्राकृतिक विषय भोगों में भी कुछ आनन्द है तो सही; परन्तु वह शीघ्र ही विकार को प्राप्त हो जाता है, रुचता नहीं, पहिले खूब भाता है, फिर कुछ भी नहीं भाता। प्राकृतिक सुख तो क्षण-भंगुर भी होते ही हैं। एक सबसे बड़ी कठिनाई यह भी है कि प्रकृति के सुख सब को, सर्वत्र, सब कालों में और अपेक्षित मात्रा में सुलभ नहीं हैं। यही कारण है कि प्राकृतिक विषय-भोग किसी को भी सन्तुष्ट नहीं कर पाते।

उन को भी नहीं जिनके पास भौतिकता की दृष्टि से सब कुछ है । शीघ्र ही वा कुछ विलम्ब से जीवात्मा को प्रकृति से तो विमुख होना ही पड़ता है ।

१८—चिरस्थायी आनन्द और विकार रहित की प्राप्ति के लिए जीवात्मा ईश्वर की शरण ग्रहण करता है । ज्यों-ज्यों जीवात्मा का ईश्वरानुराग बढ़ता है, विवेक जागता है और प्राकृतिक संसर्ग छूटता है, त्यों-त्यों अधिकाधिक आनन्द की प्राप्ति वा अनुभूति उसे होने लगती है । जब एक बार इस ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति जीवात्मा को हो जाती है, तब फिर और कोई सुख वा प्रलोभन उसे जंचता नहीं । कुछ और तो उसे कुछ भी नहीं भाता । सांसारिक मुद-मंगल, मौज-मज़े, हास-विलास, धन-वैभव, पद-मर्यादा में—सब के सब उसे हेय जान पड़ते हैं । वह अनन्य भाव से अपने आपको ईश्वरार्पण कर देता है ।

१९—श्रेष्ठ कवियों ने इस पावन-प्रसंग के बहुत सुन्दर-सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं । यथा—

उसकी नजर में सूरत, जंचती नहीं किसी की ।
जिस दिल में बस रहा हो, या रब जमाल तेरा ।।

एवमेव—

खड़े मूक उपहार सम, भक्त और भगवान् ।
भक्त मूर्त्त अर्चन बना, प्रभु रूप वरवान ।।

और भी—

हिज्र का नक़शा इन आंखों में जमा लूं तो कहूं ।
सामने से तुझे इक बार हटा लूं तो कहूं ।।

२०—वह रोना-गाना तो सब उसके वियोग में ही था । अब वह मिल गया तो वियोगी मौन होकर बैठ गया । मन-मगन होकर आनन्द लूटने लगा ।

२१—बस, जीवात्मा का यह अनन्य भाव से ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण ही हमारा भक्तिवाद वा उपासनावाद है ।

२२—आस्तिक स्त्री-पुरुष, वे चाहे जिस किसी भी सम्प्रदाय के हों, उनके जीवन में इस भक्तिवाद का प्रमुख स्थान होता है । ऐसा ही होना भी चाहिए । भक्ति आस्तिक-जन-समुदाय का एक आवश्यक और पवित्रतम कर्त्तव्य है । यह जान लेने पर हम देखते हैं कि अपने-अपने गुरुओं, तीर्थंकरों, बुद्धों, महापुरुषों वा नेताओं आदि के प्रति नास्तिक-समुदाय भी उसी अनन्य-भाव से आत्म-समर्पण वा प्रेम-प्रदर्शन कर रहे हैं, जैसे कि आस्तिक-जन अपने आराध्य-देव के प्रति करते हैं । जब स्थिति यह है, तब तो हमें बाध्य होकर नास्तिकों की रीति-नीति को भी एक दूषित अथवा घटिया प्रकार की भक्ति या उपासना-पद्धति ही स्वीकारना पड़ता है ।

२३—यह पद्धति घटिया और दूषित इसलिए है कि राग, द्वेष आदि से युक्त अल्पज्ञ और मरणधर्मा मनुष्य की भक्ति—चाहे वह मनुष्य पूर्ण विद्वान्, परम-धार्मिक, तत्वदर्शी और जीवन-मुक्त ही क्यों न हो, उसकी उपासना से, ईश्वरीय उपासना जैसे आनन्द की प्राप्ति तीन काल में भी नहीं हो सकती ।

२४—जैसाकि हम पहिले भी संकेत कर चुके हैं, नास्तिकों की मनुष्य-पूजा रूप इस दूषित-उपासना-पद्धति से यह भली प्रकार सिद्ध और पुष्ट होता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तःकरण की सहज प्रेरणा द्वारा भक्ति-धर्म के अनुष्ठान द्वारा आनन्द के प्राप्त होने का पूर्ण विश्वास रखता है।

२५—ईश्वरोपासना के विविध रूप संसार में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। नाना प्रकार की कठोर साधनायें की जा रही हैं। यज्ञ, याग, संध्या, पूजा, तिलक, छाप, कण्ठी, माला, जप, तप, रोज़ा, नमाज़। आदि-आदि इन सभी के मूल में ईश्वरोपासना की विशुद्ध पुट विद्यमान है।

२६—प्रिय मिलन की एक दुर्दमनीय चाह है। कभी भी शान्त न होने वाली एक भभकती हुई ज्वाला है। ढंग के साथ ही···जहाँ-तहाँ ढोंग भी पाय जाता है। परन्तु सांच को आंच कहाँ ?

२७—संसार में मानव-समाज के जितने भी प्रेम के सम्बन्ध हैं। भक्त समुदाय अपनी कल्पना के द्वारा उन सभी सम्बन्धों का आरोप ईश्वर में करता है। ईश्वर ही उसका माता, पिता, प्रिय-मित्र. बन्धु और भ्राता है। वही उसका शिक्षक भी है, शासक भी। ईश्वर ही प्राणाधार है। ईश्वर के विना उसका जीवन बेकार है। पति-भाव से तो ईश्वर-भजन होता ही है, ईश्वर को पत्नी मानकर चलने में भी भक्त-समुदाय चूका नहीं है। उदाहरण के रूप में सूफी-सन्तों के "माशूक" को यहां याद किया जा सकता है।

२८—ईश्वर को माता व पिता मानकर भक्त सरल हृदय से बालकवत् तोतली बोली में आत्म-निवेदन करता है। अभाव की पूर्ति पर विशेष बल देता है। रोता है। मचलता है। रूठ जाता है। उस की आनन्दमयी गोद में बैठकर, उछल-कूद कर बाल-सुलभ लीला का आनन्द प्राप्त करता है।

२९—ईश्वर को प्रिय मित्र, बन्धु, भ्राता, शिक्षक और शासक मानने वाला भक्त-समुदाय कल्पना-लोक में ईश्वर से अपने सुख-दुःख की बातें करते हैं। उसकी सहायता के भरोसे पर वे बड़े-बड़े दुस्साध्य कार्यों को भी कर डालते हैं। बड़ी-बड़ी शक्तियों से जा टकराते हैं। अपने दृढ़ ईश्वर-विश्वास के आधार पर बड़े-बड़े चमत्कार कर दिखते हैं। पाप, जिसका रूप बड़ा मोहक है, और जो कि अनायास ही जन साधारण को नाना प्रकार के प्रलोभनों में फांस लेता है, इन ईश्वर-भक्तों के सामने आते ही भस्मसात् हो जाता है। कामिनी और कांचन इन प्रभु-प्रेम मतवालों के सामने अतितुच्छ हैं।

३०—तो भक्त-विरह के राग अलाप रहा है। उसके प्रत्येक शब्द से विरह व्यथा की चिंगारियां निकल रही हैं—

अंखियां प्रभु-दर्शन की प्यासी।
देखन चाहत उस रस-निधि को,
निशि दिन रहत उदासी॥
अंखियाँ प्रभु-दर्शन की प्यासी॥

३१—विरह-कथा ने नानक को पागल बना डाला। रोग का निदान करने के

लिये पिता ने वैद्यराज बुलाये। इस कौतुक को देखकर नानक का अन्तरात्मा आर्त-नाद कर उठा—

बपुरा वैद बुलाईयो, पकड़के देखी बांहि।
बैद ने बेद न जानई, करक करेजे मांहि ॥

३२—मूर्ख वैद्य ने औषधोपचार आरम्भ कर दिया। अन्त में नानक को कहना पड़ा—

जाहु बेद घर आपने, तेरा किया न तोय।
जिन या बेद न निर्मई, भला करेगा सोय ॥

३३—ज़ौक तो ज़िन्दगी से ही बेज़ार है—

पानी तबीब देते हमें क्या बुझा हुआ।
है दिल ही ज़िन्दगी से हमारा बुझा हुआ ॥

३४—उस्ताद ग़ालिब ने रुदन की महिमा गाई है—

रोने से और इश्क में बेवाक हो गये।
धोये गये हम इतने कि बस पाक हो गये ॥

३५—कबीर ने किसी प्रसंग में कहा था—

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे ॥

३६—पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की पावन-प्रणाली का चमत्कार देखा—

नयामत के आंसू गिरे आंख से।
मेरे क़र्ज़ सारे अदा हो गये ॥
नयामत के आंसू गिरे आंख से।
मेरे फर्ज़ सारे अदा हो गये ॥

३७—हाय रे रुदन! ऐसा कौन-सा कठोर हृदय है, जो इस रुदन पर पसीज न जाये? हां, मगर—यह व्यथा कोरी व्यथा ही नहीं है। यह काफी मजेदार भी है—

नहीं इश्क का दर्द लज्ज़त से खाली।
जिसे शौक़ है, वह मज़ा जानता है।

३८—सूरदास का मोहन हाथ छुड़ाकर भाग गया था। सूरदास ने कहा—

हाथ छुड़ाये जात है, निबल जान के मोय।
हृदय से जब जायेगा, सबल बदूंगा तोय ॥

३९—भला, बेचारे मनमोहन में वह सामर्थ्य कहां, जो सूरदास की चुनौती को स्वीकार कर सके?

४०—सन्त कबीर को अपने प्रियतम के नाम पत्र लिखने की बात सूझी थी। उसी समय उनकी वाणी नाच उठी—

प्रीतम को पतियां लिखूं, जो होवे परदेश।
तन में, मन में, नयन में, वाको क्या सन्देश ॥

जो तन-मन में बसत है, कियो हृदय में भौन।
उसको सुख-दुख कहन की, रहीं बात अब कोन॥

४१—बादशाह बाबर ने प्रसन्न होकर शराब का प्याला पेश किया। गुरु नानक देव जी ने उसे लेने से साफ इन्कार कर दिया। कहा—

गांजा, भंग, अफीम, मद, उतर जात प्रभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन-रात॥

४२—गुरु जी ने प्याला ठुकरा दिया। किसी निरंकुश बादशाह के सामने और कोई ऐसे नैतिक बल का प्रदर्शन कैसे कर सकेगा? नैतिकता-शून्य लोग तो बुरे से बुरे काम कर डालेंगे।

४३—कभी मैंने लिखा था—

क्या दौलते-दुनिया का है नशा?
जो चढ़के उतरने वाला है।
चढ़ कर न उतरने वाली मय,
पीकर के 'अमर' मस्ताना हूं॥
वह मेरा है, मैं उस का हूं,
यह बाइसे-राहत है मुझ को।
यह दूई भी यकजाई है,
अपना भी मैं बेगाना हूं॥
मैं आबे-ज़म-ज़म, गंगा-जल,
की हाजत ज़रा नहीं रखता।
मैं पूजा हूं, मैं सिजदा हूं,
मैं काबा हूं, बुतखाना हूं॥

४४—एक शायर किसी मौलवी से झगड़ रहा है—

न बागे-जन्नत की आरज़ू कर,
न जामे-कोसर की जुस्तजू कर।
शराबे-उलफत हराम ठहरी,
तो और जाहिद! हलाल क्या है?

४५—सन्त कबीर ने विवाद का अन्त कर दिया—

हरि रस पीया जानिये, कबहुं न जाये खुमार।
मैं मन्ता घूमत फिरे, नाहीं तन की सार॥

४६—भक्त की हार्दिक अभिलाषा है—

मुझ में समाजा इस तरह, तन-प्राण का जो तौर है।
जिस से न फिर कोई कहे, मैं और हूं, तू और है॥

४७—फिर एक समय वह भी आता है, जब दुख में भी सुःख की अनुभूति होने लगती है—

सुख के माथे सिल पड़े, नाम हृदय ते जाय ।
बलिहारी वा दुःख के, नाम ही नाम रटाय ॥
दुःख में सिमरन सब करें, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सिमरन करें, दुःख काहे को होय ॥

४८—एक और की भी सुनो—

राजी हैं हम उसी में जिस में तेरी रजा है ।
यां यों भी वाहवा है, और त्यों भी वाहवा है ॥

४९—अर्थात्—

आपकी जिसमें हो मरजी, वह मुसीबत अच्छी ।
आपको जिस में खुशी हो वह मलाल अच्छा है ।

५० —गीता में श्रीकृष्ण का कथन है—

"जो साधारण मनुष्यों के विश्रामार्थ रात्रि है, संयमी लोग उस में जागते—ईश्वर-भजन करते हैं और साधारण लोगों के दिन को तो वे मनस्वी लोग रात के समान ही समझते हैं।"

५१—यही किसी सूफी सन्त ने भी कहा—

इक टीस-सी दिल में उठती है, इक दर्द जिगर में होता है ।
हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है ॥

५२—कभी-कभी भक्त समुदाय कुछ ऐसी भाषा में बोलता, जिसे लोग समझकर भी नहीं समझते—

सजा कैसी ? जजा कैसी ? जब उसके आशना ठहरे ।
कभी इस घर में आ ठहरे, कभी उस घर में जा ठहरे ॥

५३—पगली दयाबाई भक्तों की मनोदशा का चित्रण करती है ।

प्रेम-मगन जे साधुजन, तिन गति कही न जात ।
छिन रोवे छिन हंसें, दया अटपटी बात ॥

५४—चाह और चिन्ता की भक्तों के पास क्या काम है--

चाह गई चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह ।
जिनको कुछ नहीं चाहिये, वे शाहन के शाह ॥

५५—रोटी का राग तो नास्तिकता की देन है—

साधु गांठ न बांधते, उदर समात लें ।
आगे-पीछे हरि खड़े, जब मांगे तब दें ॥

५६—उनके सन्तोष की छटा देखिये—

आधी और रूखी भली, सारी सों सन्ताप ।
जो चाहेगा चूपड़ी, अधिक करेगा पाप ॥

५७—रोटी की पूरी-पूरी उपेक्षा तो हो नहीं सकती—

कबिरा क्षुधा है कूकरी, करे भजन में भंग ।
इस को टुकड़ा डालकर, करिये भजन निःसंग ॥

५८—जन और धन की हानि का धक्का जनसाधारण के लिये तो असह्य ही होता है। परन्तु भक्त साफ कहते हैं—

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागे है मोर॥
जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने से ही पाइये, पूरण परमानन्द॥

५९—जो अपने कर्त्तव्य का पालन करके मौत को आलिंगन करता है, उस भक्त की ललकार सुनो—

मौत यह मेरी नहीं, मेरी कजा की मौत है।
क्यों डरूं जब मरके दोबारा नहीं मरना मुझे॥

६०—जिसने उसे एक बार देखा, बस उसी का हो गया। धुनी रमाकर उसी के द्वार पर जम गया। आचार्य चमूपति के शब्द हैं—

कहती है बुरा कहे दुनिया, इस कुलटा को पतियाना क्या?
जब प्रेम-गली में पांव धरा, तब अपयश से घबराना क्या?
उस बिन छवि छैल-छबीले की छवि देख आंख झपकाना क्या?
बिन जीभ अनाहत-नाद हुआ, कर आहत जीभ थकाना क्या?

६१—एक बौने भक्त की ढिठाई तो देखो—

यह ख्वाहिश है कि हम तुम से, तुम्हीं को मांग लें साहिब!
हमारी आरजू तुम हो, हमारा मुद्दआ तुम हो॥

६२—देखी, त्यागी कहलाने वाले भक्त की चतुराई। रोटी नहीं मांगी। कपड़ा नहीं मांगा। पद नहीं, मर्यादा नहीं, धन, माल, भोग और ऐश्चर्य नहीं। दाता से दाता को ही मांग लिया। बाकी रहा भी क्या?

भक्त और भगवान के बाहम इशारे हो गये।
बन गये हम उनके जब, तब वो हमारे हो गये॥

६३—उसके दर्शन के लिये विविध प्रकार के आयोजन किये गये। संकल्प-विकल्प के घोड़े भी दौड़ाये गये। थक गये। निराशा ने आ घेरा। फिर भी अपने प्रियतम पर चोट करने से वे न चूके। कैसे व्यंग्य बाण छोड़े जा रहे हैं—

तसव्वर में चले आते, तुम्हारा क्या बिगड़ जाता?
तुम्हारा पर्दा रह जाता, हमें दीदार हो जाता,

६४—कोई स्वप्न में ही यथार्थ का आनन्द लूट रहा है—

सुपने में साईं मिले, सोवत लेई जगाय।
आंख न खोलूं डरपती, सुपना ना हो जाय॥

६५—कोई बैठा-बैठा भगवान् की महिमा के गीत गा रहा है—

आँख उठा कर जो देखो तुम ईश्वर की प्रभुताई को।
पात-पात में पाओगे उस की लीला चतुराई को।

६६—कोइ आंखें मूंदकर अलाप रहा है—

दिल के आइने में है तस्वीरे यार ।
जब जरा गरदन झुकाई देख ली ॥

६७—एक और भी यही कहता है—

दिल के आइने को अल्लाह सलामत रखे ।
इसमें तो जाने-तमन्ना नजर आता है मुझे ॥

६८—जो देख लेता है, वह कभी दूसरों को बता भी देता है—

या रब ! गुलो-गुलजार में मैंने तुझे देखा ।
हर वादिये पुरखार में मैंने तुझे देखा ॥
कहता है कौन तुझ को कि तू परदानशीं है ।
हर कूचा ओ बाजार में मैंने तुझे देखा ॥

६९—एक प्रत्यक्षदर्शी का कथन है—

समाया है जब से तू नजरों में मेरी ।
जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है ॥
गुलों को हरइक शाख पर मैंने देखा ।
न तेरी-सी रंगत, न तेरी-सी बू है ॥
चमन में यही गीत गाती है कुमरी ।
तू ही तू, तू ही तू, तू ही एक तू है ॥

७०—ओ रे मेरे अपने आप! चल तू भी किसी का बन । कर आत्म-समर्पण । बादशाह जफर के शब्दों में—

न कुछ हम हंस के सीखे हैं, न कुछ हम रोके सीखे हैं ।
जो कुछ थोड़ा-सा सीखे हैं, किसी के होके सीखे हैं ॥

७१—सम्भल ! सम्भल !! ये झगड़े-बखेड़े क्यों है ? किस के लिए?

रात दिन मन्दिर ओ मस्जिद के हैं झगड़े रहते ।
दिल में ईटें हैं भरी, लब पै खुदा रहता ॥

७२—दूसरे शब्दों में—

हाथ सिमरनी, पेट कतरनी, पढ़े भागवत, गीता ।
हरि का भजन किया नहीं बावरे, कहत-सुनत युग बीता ॥
भजन बिन बावरे, तू ने हीरा-सा जन्म गँवाया ।
भजन बिन बावरे ।

७३—देख—

खुदा का घर बनाना है, तो दिल को साफ कर अपने ।
यह दीवारों की क्या तजवीज है ? जाहिद ! यह छत कैसी ?

७४—सम्भल, नहीं तो पछतायेगा—

आछे दिन पाछे गये, हरि सों किया न हेत ।
फिर पछताये होत क्या, चिड़िया चुग गई खेत ॥

७५—कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं—

ज्यों तिल मांहि तेल है, ज्यों चकमक में आग।
त्यों प्रियतम तुझ में बसे, जाग सके तो जाग॥

७६—किसी ने पा लिया, कोई पुकारता ही रह गया—

अंखियन में झाँई पड़ी, पन्थ निहार-निहार।
जिह्वा में छाले पड़े, पीव पुकार-पुकार॥
काया है दिन चार की, देखन लागे काग।
प्रियतम को पाया नहीं, मन्द हमारे भाग॥

७७—हिसाब-किताब की बातें दुनियादारों को ही मुबारक हों। प्रभु-प्रेम-मतवालों का ढंग दूसरा है—

प्रेम न जाने नियम व्रत, प्रेम न बुध-व्यवहार।
प्रेम-मगन जब मन भया, कौन गिने तिथिवार॥

७८—चलो हम भी किसी भक्त का अनुगमन करें—

कबिरा खड़ा बाजार में, सब की मांगे खैर।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर॥
कबिरा खड़ा बाजार में, लिये मराड़ा हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ॥

७९—सन्त तुकाराम का एक अभंग है—

गुड़-सा मीठा है भगवान, बाहर-भीतर एक समान।
ूंगे का गुड़ है भगवान, बाहर-भीतर एक समान॥

८०.—भक्तिवाद कोई मण्डी का माल नहीं है कि बाजार से खरीद लिया जाये—

प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
प्रेम गेंद चोगान की, जस भावे ले जाय॥
यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारे भुईं धरे, तब पैठे घर मांहि॥
प्रेम-प्याला जो पिये, सीस दच्छना देय।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का लेय॥

८१—कुछ काम ऐसे हैं, जिन को नौकरों के भरोसे छोड़ना ठीक नहीं। उनमें भक्ति भी एक है—

खेती, पाती, बीनती, और घोड़े का तंग।
अपने आप सम्भालिये, लाख लोग हों संग॥

८२—लोग भगवान् को भी भूल जाते हैं, मौत को भी। कैसी विचित्रता है?—

दो बातें भूले नहीं, जो चाहे कल्याण।
नारायण इक मौत को, दूजे श्री भगवान्॥

८३—एक बात अत्यन्त निश्चित है, किसी के टालने से वह टलेगी नही, अर्थात्

मौत। एक बात अत्यन्त अनिश्चित है। वह है मौत का समय। न जाने किस की मौत कब आयेगी? आयेगी जरूर।

इक दिन ऐसा आयेगा, काल गहे कर केस।
न जाने कित मारि है, क्या घर, क्या परदेश॥
इक दिन ऐसा होयेगा, जंगल होय निवास।
ऊपर तेरे हल चले, पशु चरेंगे घास॥
हाड जलें ज्यों लाकड़ी, मांस जले ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर, कबिरा हुआ उदास॥
चलती चाकी देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटों के बीच में, साबुत बचा न कोय॥
माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रौंदे मोय।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदूंगी तोय॥

८४—क्या था? क्या हो गया?

कहां गये वे अर्जुन योधा? कहां गये वे भीम बली?
मौत के आगे देखो लोगो! नहीं किसी की पेश चली!
कहां गये वे दारा-सिकन्दर, कहां गई वह सब्ज परी?
मौत के मुंह में सभी चले गये! खुश्की रही, न तरी रही॥

८५— और भी—

जिनके महलों में हजारों रंग के फानूस थे।
झाड़ हैं उनकी कब्र पर और निशां कुछ भी नहीं॥

८६—और भी—

जहां था जमशेदी दरबार, शान से होता था मधुपान
वहां स्वच्छन्द घूमते सिंह, वहां स्वच्छन्द घूमते श्वान॥

८७—मनुष्य अपना सारा जीवन अपने शरीर की साज-सज्जा में ही क्यों खो देता है?

केसन कहा बिगाड़िया, जो मूण्डे सौ बार।
मन को क्यों नहीं मूण्डते? जिसमें विषय-विकार॥

८८—अपने-अपने शरीर को भी विचार लो—

आदमी का जिस्म क्या है जिस पै नाजा है जहां।
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकां॥
खून का गारा है इस में, और ईंटे हड्डियां।
चन्द सांसों पर खड़ा है, यह ख्याली आसमां॥
मौत की पुरजोर आन्धी, इससे जब टकरायेगी।
देख लेना यह इमारत टूटकर गिर जायेगी॥

८९—ज्ञान से मुक्ति मिलती है। विवेक से बात बनती है। परन्तु संयम के अभाव में कहां से आये विवेक? जैसा अन्न वैसा मन—

विश्वामित्र पराशर आदि खाते थे पत्ते पानी हवा।
स्त्री मुख पंकज देखकर ललित वे भी काम-मोहित हुए।
भक्षें जो घृत, दुग्ध, माल, मेवे, दधियुक्त आहार को।
यदि वे इन्द्रिय-निग्रह कर सकें, तो विन्ध्य सागर तरे॥

९०—एक कहानी को कविता-बद्ध किया है बेनज़ीर महाकवि नज़ीर ने—

आया था किसी देश से इक हंस बेचारा
इक पेड़ पै जंगल में किया उसने गुजारा॥
देखा जो उसे पक्षियों ने सुन्दर औ उत्तम।
वह हंस लगा सब की निगाहों को प्यारा॥
जितने थे ग़रज जानवर उस पेड़ के ऊपर।
उन सब ने मुहब्बत में दिल उस हंस से हारा॥
उस हंस को जब हो गये दो चार महीने।
इक दिन वह यूं यारों की तरफ कहके पुकारा॥
लो यारो हम तो चलते हैं अब अपने वतन को।
तुमको रहे मुबारिक अब यह पेड़ तुम्हारा॥
इस बात के सुनते ही, उन सब के उड़े होश।
बोले कि यह फुरक़त तो नहीं हमको गवारा॥
जितने भी हैं सब साथ तुम्हारे ही चलेंगे।
यह कष्ट तो जायेगा नहीं, हम से सहारा
कोई तीन, कोई चार, कोई पांच उड़ा कोस।
कोई आठ, कोई नौ, कोई दस कोस पधारा॥
चीलें गिरीं, कौवे गिरे, और बाज़ भी हारे।
उस पहली ही मंजिल में किया सब ने किनारा॥
जब साथ सभी छोड़ गये आखिर को नजीर आह।
उस यात्रा में हंस अकेला ही सिधारा॥

९१—यहां हंस और कोई नहीं हमारा अपना आपा अर्थात् जीवात्मा ही है। विवेक, वैराग्य, अभ्यास अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि के नियमपूर्वक अनुष्ठान द्वारा संसार-यात्रा भी सफल हो जाती है, मौत की घाटी भी सुखपूर्वक पार कर ली जाती है। सभी मुश्किलें आसान हो जाती हैं। फिर प्रभु-मिलन की शुभ वेला भी आ जाती है।

९२—महर्षि नारद एक प्रसिद्ध ईश्वर-भक्त थे। अपने अनुभव की कुछ बातें वे "नारद-भक्ति-सूत्र" के रूप में हमारे पथ-प्रदर्शन के लिये छोड़ गये हैं। उनकी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना की कुछ आरम्भिक बातें हमारे लिये विशेष उपयोगी हैं।

९३—नारद-भक्ति-सूत्र का प्रथम सूत्र है—

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः॥ १॥
अब हम भक्ति की व्याख्या करेंगे।

९४—यह प्रतिज्ञा-सूत्र है। आगे के सूत्रों में लक्षण आदि दर्शाये जा रहे हैं। देखिये—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥ २ ॥

वह भक्ति ईश्वर के प्रति परमप्रेम स्वरूपा है।

९५—दूसरा लक्षण करते हैं—

अमृतस्वरूपा च ॥ ३ ॥

और वह भक्ति अमृतस्वरूपा भी है।

९६—भक्ति के लाभ और भक्त का स्वरूप देखें—

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो
भवति, तृप्तो भवति ॥ ४ ॥

उस परम प्रेम स्वरूपा और अमृत स्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके उसका अनुष्ठान करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है। तृप्त हो जाता है।

९७—बात को अधिक स्पष्ट करते हैं—

यत्प्राप्य न किञ्चद्वाञ्छति, न शोचति,
न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति ॥ ५ ॥

उस परम प्रेमस्वरूपा व अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य न किसी वस्तु में आसक्त होता है, और न ही विषय-भोगों की प्राप्ति के लिये उत्साही होता है।

९८—दूसरे शब्द में फिर यही कहते हैं—

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति,
आत्मारामो भवति ॥ ६ ॥

उस भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य मस्त हो जाता है, शान्त हो जाता है, आत्माराम बन जाता है अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, अपने आप में ही मगन हो जाता है।

९९—अनासक्ति एवं निष्कामता दर्शाते हैं—

सा न कामायमाना निरोधरूपत्वात् ॥ ७ ॥

वह भक्ति कामना युक्त नहीं है; क्योंकि वह तो निरोध स्वरूपा है।

१००—निरोध किसे कहते हैं? देखिये—

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः ॥ ८ ॥

१०१—लौकिक और वैदिक कर्मों (कर्म-काण्ड)के परित्याग को निरोध कहते हैं। यहां तत्त्वज्ञान-प्राप्ति के बाद जिस संन्यास अर्थात् लौकिक कर्मों के साथ ही वैदिक-कर्मों का भी परित्याग दर्शाया गया है, यह वेद का परित्याग नहीं है, वैदिक ज्ञानकाण्ड का परित्याग भी यह नहीं है। यह तो निष्कामता वा अनासक्ति का ही विधान है। यहां चित्तवृत्तियों के निरोध का ही प्रतिपादन है। "वैदिक-भक्तिवाद" का अनुष्ठान पूरा होने पर ही इस स्थिति की प्राप्ति हो सकेगी। ●

—मदनसिंह देवड़ा

वीर दुर्गादास राठौर

आज से लगभग ३२४ वर्ष पूर्व, जब कि देश में मुगल सम्राट् औरंगजेब अपने शासन की जड़ें मजबूत करने हेतु 'येन-केन प्रकारेण' राजपूतों का दमन करने में लगा हुआ था, मरुधराधीश महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) के प्रधानमन्त्री आसकरणजी के यहां श्रावण चतुर्दशी संवत् १६९५ को दुर्गादास का जन्म हुआ। अपने पौरुष, पराक्रम तथा कुशल सेनानी होने के कारण ही आज वह 'वीर दुर्गादास' के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। दुर्गादास जहां अद्वितीय योद्धा और स्वामिभक्त थे, वहां वे कुशल राजनीतिज्ञ, रंक-हितैषी तथा दूसरे धर्मों का सम्मान करने वाले भी थे।

वीर दुर्गादास के पिता ही नहीं, उनकी माता मांगीलयाणीजी भी एक वीर क्षत्राणी थीं। कहा जाता है कि अपने प्रधान मन्त्रित्वकाल में जब आसकरणजी अपनी छुट्टी व्यतीत करने के हेतु कुछ अन्य सरदारों के साथ अपने गांव जा रहे थे, तब वह मार्ग में उस गांव में पहुंचे, जहां रास्ते में दो सांड आपस में लड़ रहे थे। इधर-उधर कोई रास्ता न पाकर आसकरण जी को मार्ग में ही रुक जाना पड़ा। संध्या हो जाने पर भी सांडों की लड़ाई समाप्त न हुई और आसकरणजी को आगे बढ़ने के लिए रास्ता न मिला। इसी बीच एक कन्या (जो कि बाद में आसकरणजी की पत्नी और वीरवर दुर्गादास की जननी बनीं) ने आकर आसकरणजी को इंगित करते हुए कहा कि या तो आगे बढ़ो अन्यथा मुझे आगे बढ़ने दो। इस पर आसकरणजी ने उन्हें समझाया कि सांड लड़ रहे हैं, अतः आगे जाना उचित नहीं है। परन्तु वह तो वीर-बाला थी, वह आगे बढ़ी और दोनों सांडों के सींग पकड़-कर उन्हें अलग करती हुई आगे चली गई। आसकरणजी और उनके साथी सरदार इस घटना को देखकर चकित रह गए।

वीर जननी

इस घटना का आसकरणजी के मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे उस वीर-बाला को वरण करने का निश्चय कर बैठे। उन्होंने तुरन्त ही बाला के पिता को, जो एक मान्य राजपूत सरदार थे, प्रस्ताव भिजवाया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही उनका पाणिग्रहण हो गया।

वीर दुर्गादास राठौर का जीवन आरम्भ से अन्त तक वीरोचित आचरणों से भरा पड़ा है। जहां वे रण-क्षेत्र में अरि-दल को क्षमादान न देने वाले थे, जहां वे जाति या धर्म को देखते हुए शरणागत के रक्षक भी थे। वे एक कुशल योद्धा और राजनीति प्रवीण थे। उनमें संगठन का बृहद् ज्ञान था। साथ ही वे दयालु, सहिष्णु, उदार और महान त्यागी थे।

दुर्गादासजी जब युवा ही थे, तब एक

दन वे अपने खेत पर काम करने में व्यस्त थे। निकट के एक ग्राम के निवासियों ने उन्हें समाचार दिया कि उक्त गांव में मारवाड़ नरेश के टोले के ऊंटों ने खेतों को नष्ट कर दिया है। दुर्गादासजी इसे सहन न कर सके और उसी समय उक्त गांव के लिए चल दिए। गांव में पहुंचकर उन्होंने ऊंटों के चरवाहों को समझाया। परन्तु जब उनमें से एक चरवाहा तुच्छ गाली-गलोच करने पर उतारू हो गया तब उनसे सहा न गया और उन्होंने तुरन्त ही अपनी तलवार से उसका सर धड़ से अलग कर दिया।

इस घटना का समाचार जब महाराजा जसवन्तसिंह के पास पहुंचा तब उन्होंने दुर्गादास को दरबार में उपस्थित होने का आदेश भेजा। दुर्गादास ने दरबार में उपस्थित होकर एक निडर एवं साहसी वीर की भांति महाराजा से वार्ता की। महाराजा जसवन्तसिंह दुर्गादास के वार्तालाप से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसे अपने पास रख लिया। यही नहीं दुर्गादास द्वारा उज्जैन के प्रसिद्ध युद्ध में प्रदर्शित की गई वीरता से महाराज इतने प्रभावित हुए कि एक बार सेना के पड़ाव के समय शयनावस्था में दुर्गादास के मस्तक पर धूप आ जाने पर उन्होंने स्वयं अपने वस्त्र ले उन पर छाया की जिसे अन्य सामन्त आश्चर्यचकित देखते ही रह गए।

उपकार का बदला

पेशावर में महाराजा जसवन्तसिंह का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् उनकी दोनों रानियों तथा राजकुमार अजीतसिंह को सुरक्षित दिल्ली लाने में दुर्गादास ने बड़े साहस का परिचय दिया। उस समय औरंगजेब रानियों तथा दोनों राजकुमारों को किसी भी प्रकार बन्दी बनाने के लिए प्रयत्नशील था। दुर्गादास ने उन्हें मारवाड़ रवाना किया। रानियों तथा राजकुमारों की सुरक्षा के लिए दुर्गादास मुगलों की सेना से मोर्चा लेते हुए २३ जुलाई को मारवाड़ पहुंचे।

इसके पश्चात् परिस्थिति अनुकूल होने पर जब अजीतसिंह मारवाड़ की गद्दी पर विराजे तब कुछ सामन्तों और सलाहकारों ने दुर्गादास और महाराजा अजीतसिंह में मतभेद पैदा कर दिया। और उसका अन्त हुआ सन् १७०८ में जबकि अजीतसिंह द्वारा दुर्गादास को सदा के लिए मारवाड़ से चले जाने का आदेश दिया गया। महान् वीर ने अपने स्वामी के आदेश को, जिसकी रक्षा के लिए उन्होंने स्वयं के जीवन का बहुत बड़ा भाग भेंट किया था, सर झुकाकर स्वीकार किया और वे अपने घोड़े पर सवार हो सदैव के लिए अपनी मातृभूमि मारवाड़ से विदा हो गए। उस प्रणवीर ने, जब तक कि वह मारवाड़ की भूमि से निकल न गया, भूमि पर पांव न रखा और रात-दिन अपने अश्व की पीठ पर ही समय काटा। अश्व पर बैठे-बैठे ही उन्होंने भाले की नोंक से बाटियां सेंकी और पेट भरा।

इस प्रकार वीर दुर्गादास मेवाड़ पहुंचे, जहां महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने उनका सम्मान किया और उन्हें मेवाड़ में जागीर प्रदान की।

वीर-श्रेष्ठ दुर्गादास ने अन्य राजपूत सरदारों के साथ औरंगजेब द्वारा उदयपुर पर आक्रमण की योजना को विफल कर दिया। मुगल सम्राट् के तीनों पुत्र अकबर,

मोअज्जम तथा आजम आक्रमण करने में सफलता न प्राप्त कर सके।

महान् कूटनीतिज्ञ

दुर्गादास वीर योद्धा ही नहीं, एक कुशल कूटनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने अकबर को औरंगजेब के विरुद्ध बगावत के लिए तैयार कर लिया और उसे अपना पूरा सहयोग देने का वचन दिया। ऐसी स्थिति में दुर्गादास पर शाहजादा अकबर की सुरक्षा का पूर्ण दायित्व आ गया और दुर्गादास के साथ-साथ वीरवर सोनग ? चम्पावत भी अकबर को अपने संरक्षण में लेकर सुरक्षित स्थानों में घूमते रहे।

औरंगजेब ने, इस योजना का पता लगते ही, सब ओर अकबर और दुर्गादास को बन्दी बनाने के आदेश भेज दिए। परन्तु दुर्गादास अपने चातुर्य से सन् १६८१ में अकबर को सुरक्षित दक्षिण में ले गए, जहां वे लगभग पांच वर्ष रहे।

चारित्रिक महानता

वीर दुर्गादास के चरित्र की महानता इसी से प्रकट हो जाती है कि उन्होंने औरंगजेब के पोते सुल्तान बुलन्द अख्तर और पोती सफीयतुन्निसा को अपनी औलाद से भी अधिक प्यार किया और स्वाभिमानी हिन्दू होते हुए भी शहजादे और शहजादी को उनके धर्मानुसार इस्लामी शिक्षा दिलाई। जब शहजादी औरंगजेब को सुरक्षित लौटाई गई तब मुगल सम्राट् को दुर्गादास की इस महानता का ज्ञान हुआ और उससे वीर श्रेष्ठ की प्रशंसा किए बिना न रहा गया।

ऐसे महान् वीर, कुशल नीतिज्ञ, योग्य संगठक वीर दुर्गादास, रामपुरा (वर्तमान मालवा में एक ठिकाना) में जहां कि वे हाकिम थे, २२ नवम्बर सन् १७१८ को ८० वर्ष की अवस्था में इस संसार से सर्वदा के लिए विदा हो गए।

उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर उस महान् वीर की स्मृति में बनी एक जीर्ण-शीर्ण छतरी के मूक पाषाण कह रहे हैं—"क्या है कोई इतना महान् त्यागी, जिसने अपने रक्त से अजीतसिंह के लिए सब कुछ जुटाया और अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। अन्त में मातृभूमि की एक इंच भूमि भी उसके लिए न रही।" ●

किसी भुलक्कड़ से प्रतिनिधि को किसी फर्म ने एक दूसरे शहर की फर्म के पास भेजा। दूसरे शहर में पहुंचने पर प्रतिनिधि फर्म का नाम भूल गया। उसने अपने फर्म के पते पर जवाबी तार दिया, "कृपया फर्म के नाम की सूचना दें।"

तार का उत्तर आया—"फर्म का नाम है मेसर्स रामेश्वर ब्रदर्स और तुम्हारा कैलाशचन्द्र।"

●

"रामू, तुम्हें हमारे यहां काम करते हुए पच्चीस वर्ष हो गये। हम तुम्हारी सेवाओं से अत्यन्त प्रसन्न हैं और तुम्हारे लिए कुछ करना चाहते हैं।" व्यापारी ने अपने पुराने नौकर से कहा।

रामू, (खुश होते हुए)—"आपकी मेहरबानी होगी सरकार।"

व्यापारी, "आज से हम तुम्हें रामूजी कहा करेंगे।"

●

बालकृष्ण गुप्त एम० ए०

आर्य बनाम आर्यसमाज

आर्य समाज हृदय या मनुष्य समाज का, नए भाव, नया रक्त, नयी चेतना और एक विश्व की उदात्त भावना का सूत्रधार। उसकी स्थापना का लक्ष्य था क्रांति विचारों की, किन्तु समय के थपेड़ों ने लक्ष्य भुला दिया। महर्षि दयानन्द द्वारा दीप्त ज्योति की चिंगारियों को मशाल बनाने के लिए आज आर्य समाज में क्रांति कर उसे सही राह पर चलाना समय की सबसे बड़ी मांग है—संपादक

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् सारे संसार को आर्य बनाने का उदघोष करने का केवल उसी व्यक्ति को अधिकार है जो स्वयं आर्य हैं। "आर्य" शब्द से तात्पर्य आर्यसमाज संस्था का १ रु० मासिक चन्दा देकर बने हुए सदस्य से नहीं है बल्कि स्वामी दयानन्द द्वारा दी गई कसौटी से है, अर्थात् **"जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्यविद्या आदि गुण युक्त हैं उनको "आर्य" कहते हैं।"**

यह शब्द किसी धर्म, जाति व्यक्ति और देश विशेष तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि इनका सम्बन्ध उन सिद्धान्तों व आचरणों से है जो "आर्य" शब्द के गुणवाचक हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि आज **'आर्य'** और **'आर्यसमाज'** में दिनों-दिन दूरी बढ़ती जा रही है। वैसे शाब्दिक रूप से 'आर्य' और आर्य समाज में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। आर्य की परिभाषा तो ऊपर दी हीजा चुकी है, आर्य समाज इसी तरह के श्रेष्ठ, धर्मात्मा व परोपकारी विद्वानों के समुदाय को कहते हैं। आर्य समाज उस व्यापक समाज का नाम है जहां मानवीय शाश्वत सत्यों और गुणों का पाठ सिखाया जाता है। जहां पर मानवता अपने चरम विकास की ओर अग्रसर होती है। आर्यसमाज के संस्थापक की दृष्टि में आर्यसमाज का यही रूप था। आज अपने स्वरूप को पहिचानने से इंकार कर दिया है। आज हम आर्य-समाजियों का निर्माण कर रहे हैं, आर्यों का नहीं। सही अर्थ में वही व्यक्ति आर्य-समाजी कहलाता है जो आर्य होता है परन्तु आज तो आर्यसमाज संस्था का सदस्य है वही आर्य (?) है। आधार की पवित्रता, जीवन की सत्यता और हृदय की की महानता से जैसे हम दूर भागते जा रहे हैं। आज हम संस्थावाद, बिल्डिंगवाद और विद्वेषवाद में इतने अधिक उलझ गये हैं कि हम महर्षि दयानन्द द्वारा इंगित मार्ग को ही भूल बैठे हैं।

आर्य समाज की स्थापना करने का स्वामी जी का यह उद्देश्य कदापि नहीं था कि वह एक ऐसी संस्था की स्थापना करें जो किसी न किसी तरह नाम-मात्र के आर्यों (आर्यसमाजियों) की संख्या-वृद्धि करे और अपने धर्म की श्रेष्ठता की डींग हांकते हुए दूसरे धर्मों का पूरी शक्ति और सामर्थ्य

से खण्डन करे और स्वयं अपने जीवन में आर्यत्व का भाव ही न आने दे। वास्तव में आर्य समाज नाम की संस्था अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखती, इसका उद्देश्य संसार को आर्य बनाना है, आर्यसमाजी मात्र नहीं। किस तरह से किसी भवन के निर्माण के लिए स्थान बनाना पड़ता है और भवन का निर्माण हो चुकने पर स्थान की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। आर्य समाज एक स्थान ही है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को उस स्थान पर पहुंचाना है जहां पर मानवता अपने पूर्ण रूप में विकसित होती है। आर्य समाज की स्थापना अस्थाई है। वह अपने आप में कोई संस्था या सम्प्रदाय नहीं है बल्कि सत्य और मानवता तक पहुंचने की एक सीढ़ी है, एक सवारी है।

आज हम अपने लक्ष्य भूलकर पथभ्रष्ठ हो गये हैं। अपनी गरिमा, महानता और और विशालता को खोकर हम अतीत के इतिहास में विलीन होने की तैयारी कर रहे हैं। धार्मिक क्षेत्र में आर्य समाज अपनी व्यापकता को खोकर अन्य-अन्य समुदायों की तरह संकुचित रूप धारण करता जा रहा है। जिस तरह से एक पौराणिक अपने को इसलिये शैव, शाक्त और वैष्णव मानता है क्यों कि उसके माता-पिता उसकी पूजा करते थे या उसका जन्म उनको मानने वालों के घर में हुआ था। ठीक वैसी ही हालत आर्य समाज में दिखाई पड़ रही है। वह नहीं जानता कि मेरा समाज सम्प्रदाय नहीं बल्कि शाश्वत मानवधर्म है। मेरी दीक्षायें किसी समय विशेष और किसी दिन विशेष तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि उनको हर क्षण स्मरण रखना और ध्यान रखना है कि वह उस पथ का अनुयाई है जहां प्रकाश है—केवल प्रकाश। वह भूल जाता है कि वह सभी सम्प्रदायों से ऊपर हैं, सभी वाद-विवादों से परे है। उसका सम्बन्ध जीवन के उन मूल्यों से है जिनको प्राप्त करने का प्रयत्न हर युग का हर महापुरुष करता आया है, जो सदैव नवीन है, सार्वभौमिक है, चिरन्तन है, जिसका कभी विनाश नहीं हो सकता। 'आर्य' या आर्यसमाजी की पदवी जन्म-जात प्राप्त नहीं होती और न ही विरासत में मिलती है बल्कि हमें इनको अपनी साधना, तपस्या और आचरण से प्राप्त करना पड़ता है। व्यक्ति अपने नाम के बाद 'आर्य' लगाने मात्र से आर्य नहीं बन जाता।

आज हम किसी भी आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में जायें, वहां पर कुछ इने-गिने सफेद बालों वाले सदस्य बैठे मिलेंगे। कोई युवक या बालक अगर भूल से पहुंच गया हो तो शायद मिल जाये। हमने शायद सोचा कि आर्य समाज की आवश्यकता बालकों, महिलाओं और युवकों को नहीं है केवल वृद्धावस्था में ही इसकी उस समय आवश्यकता पड़ती है जब इन्द्रियां शिथिल पड़ जाती हैं और मृत्यु सामने ताण्डव नृत्य करती दिखाई देती है। हमने भुला दिया कि किसी भी समाज का तब तक विकास नहीं हो सकता जब-तक कि उसमें समाज के प्रत्येक वर्ग का हाथ न हो। लेकिन इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि जब तक किसी संस्था को तरुणों के खून-पसीने से नहीं सींचा जाता तब तक वह लहलहाती नहीं है, जब तक उसमें बालकों का चहचहाना और विनोद-वार्ता नहीं होती तब तक वह संस्था नहीं खिलती है

और जब तक नारी को उसमें समुचित स्थान नहीं मिलता तब तक वह संस्था पंगु बनी रहती है। हमने अपने दायित्व को भुला दिया हम चले तो अवश्य परन्तु अपने परिवार, अपने समाज को पीछे छोड़कर और आज हममें और हमारे समाज में इतना अन्तर आ गया है कि दोनों का साथ होना कम-से-कम आज तो असम्भव जान पड़ रहा है। यह सोचकर दिल को बहुत घबराहट और बेचैनी होती है कि जब वृद्ध लोग इस संसार से विदा हो जायेंगे तब साप्ताहिक सत्संग लगाने मन्दिरों में कौन आयेगा? आज जिनको हम कट्टर आर्य समाजी कहते हैं, जो बड़े-बड़े अधिकारी हैं उनका परिवार धर्म-विरोधी होता जा रहा है। उनका एक भी बालक आस्तिक व धार्मिक नहीं है। समाज मन्दिर में आज तक जिनकी कभी सूरत नहीं देखी गई। अगर गैर आर्य-समाजी आर्य समाज का विरोध करते हैं तब तो बात कुछ ठीक भी हो। परन्तु जब स्वयं आर्य समाजी व उनका परिवार ही कुल्हाड़ी लेकर समाज के उन्मूलन पर बैठे हों तो इसका भविष्य क्या होगा, यह ईश्वर ही जान सकता है।

आर्य समाज का अतीत का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। आर्य समाज ने गिरते भारत को थाम लिया, मरते भारत को जिला दिया। इसके पीछे हमारा कोरा संस्थावाद नहीं था बल्कि आर्यों का त्याग, तपस्या और बलिदानों का इतिहास रहा है। आर्य समाजी को 'आर्य' का पर्याय माना जाता था। हमारे सिद्धान्तों और आचरणों में सामंजस्य था। एक समय था जब आर्य समाजी की गवाही पर न्यायालय में उसके पक्ष में निर्णय

भाषण देना अब बन्द करो
कुछ काम करो! कुछ काम करो!

दिया जाता था। यह हमारी नैतिक विजय थी। परन्तु आज हम स्वयं अपने न्याय के लिए न्यायालयों की शरण में जा रहे हैं। यह विरोध कैसा? आर्य समाज जीवन की पूर्णता का प्रतीक था। इसने जीवन के सभी क्षेत्रों में हलचल मचादी थी। इसका मूल-रूप धार्मिक परन्तु समय की मांग के अनु-रूप अन्य क्षेत्रों में भी उपलब्धियां प्राप्त की थीं। परन्तु आज आर्य समाज विशुद्ध राजनैतिक रूप धारण करता जा रहा है। आर्य समाज मन्दिर राजनीति के विस्फोटक अड्डे बन गए हैं और बनते जा रहे हैं। राजनीति की गन्दगी इसमें अच्छी तरह से प्रवेश कर गई है। आज का आर्य-समाज आर्यों का समाज नहीं है, स्वामी जी का समाज नहीं है। हमने अपने और अपने गुरु के बीच, आर्य और आर्य समाज के बीच, सिद्धान्त और आचरण के बीच बहुत बड़ी खाई पैदा करली है। आर्य-समाज के संस्थापक ने निर्वाचन प्रणाली इसलिये रखी थी कि जिससे समाज में शासन-व्यवस्था की एक आदर्श प्रजातांत्रिक प्रणाली स्थापित हो सके। निर्वाचन के द्वारा अधिकारियों का इसलिए चयन किया जाता था कि जिससे वह व्यक्ति समाज के

लिए अधिक से अधिक कार्य कर सकें। यह तो एक गौड़ बात रही है। मूल उद्देश्य तो समाज की "शारीरिक आत्मिक और सामाजिक" उन्नति करना रहा है। आज हम प्रधान को गौड़ और गौड़ को प्रधान मान बैठे हैं, इससे बढ़कर और विडम्बना क्या हो सकती है। हम कुर्सीबाजी की कलाबाजी में बहुत दक्ष हो गए हैं। जहां देखो वहीं राजनीति ने अपना मोर्चा जमा रखा है। समाज में आन्तरिक नीति तो है ही साथ में राजनैतिक पार्टियों की राजनीति ने भी इसमें अपने गुल खिलाना प्रारम्भ कर दिये हैं। अपने धर्मशास्त्रों में जीवन का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति बतलाया गया है परन्तु हमारे नवयुगीन आर्य समाजो भाइयों के जीवन का लक्ष्य कुर्सी की प्राप्ति बन गया है। सेवा और त्याग की वह बलवती भावना जिसने हमारे समाज को यहां तक खींचा है अब पलायन करने लग गई है। गुटबन्दी, ईर्ष्या, लोलुपता, स्वार्थ और अहं ने अपना डेरा डालना प्रारम्भ कर दिया है। आर्य समाज की शक्ति का बहुत बड़ा ह्रास डी. ए. वी. शैक्षणिक संस्थाओं से भी हुआ है। इन शैक्षणिक संस्थाओं में भी वही शिक्षा दी जाती है जो अन्य शासकीय संस्थाओं में फिर व्यर्थ ने क्यों अपनी शक्ति का अपव्यय? हां, अगर हम अपनी गुरुकुल प्रणाली के प्रचार और प्रसार में अपनी शक्ति का उपयोग करते तब तो उचित था। यह तो स्पष्ट ही है कि हर शैक्षणिक संस्थाओं में भी राजनैतिक दलबाजी प्रवेश कर गई है, उसी का शिकार आर्य समाज की शैक्षणिक संस्थायें हो गई हैं। इनके कारण तरह-तरह के विवाद, झगड़े और विरोध खड़े हो जाते हैं जिनसे आर्यसमाज की गरिमा को चोट पहुंचती है। इसके, समाज के कार्य-कर्त्ताओं का ध्यान केवल इन्हीं की ओर केन्द्रित हो जाता है जिसके कारण अपना मूल लक्ष्य भूल जाते हैं। पद लोलुपता, स्वार्थ और अन्य सभी मानवीय कमजोरियां हम को दबोचती जा रही हैं। आज समाज में राष्ट्र-निर्माण या राष्ट्र-विरोधी तत्वों से रक्षा के विषय में तो कोई कार्य-क्रम या योजनायें नहीं बन रहीं, हां अपनी रक्षा और अपने निर्माण के कार्य-क्रम बड़े पैमाने पर प्रारम्भ हो गए हैं। आर्य समाज आज पूर्णरूपेण बदनाम हो गया है। लोग-बाग आर्य समाज के सिद्धान्तों (वैदिक) में तो श्रद्धा रखते हैं परन्तु आर्य समाज की वर्त्तमान हालत और आर्य समाजियों के निजी जीवन को देखकर इसके नजदीक आने में कतराने लगे हैं। हमने लोगों की प्राचीन अन्ध रूढ़ियों व अन्ध-विश्वास को झकझोरकर तो उनसे उनको मुक्त कर दिया परन्तु हम उनकी कुछ स्वस्थ स्थाई आस्था और श्रद्धा न दे सके। हम इतने अधिक बौद्धिक हो गये, कि हम लोगों की श्रद्धा और आस्था की रिक्तता को न भर सके। हां हम अपने आचरण अपने कार्यों, अपने जीवन के आदर्श से दिशा निर्देश कर सकते थे परन्तु हम स्वयं उस भौतिक प्रवाह में बह गये जिसके विरुद्ध हमने युद्ध छेड़ा था। इसका परिणाम आज यह है कि हम बीच चौराहे पर उस भ्रान्त पथिक की तरह खड़े हुए हैं जिसको कि किसी ने लूट लिया हो।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व आर्यसमाज ने सभी क्षेत्रों में—सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक—कार्य किया। उस समय इन सभी कार्यों को अपने कार्य-क्रमों में

शामिल करना आवश्यक भी था क्योंकि उस समय हमारा शासन नहीं था। आज देश की स्थिति बदल गई है। समाज-सुधार के प्रायः सभी कार्य शासन ने अपने हाथ में ले रखे हैं। आज हमें आर्य समाज की गति-दिशा की ओर पुनर्विचार करना होगा। आज मानव समाज के जीवन-दर्शन में परिवर्तन हुआ है। सारा विश्व सत्य से असत्य की ओर, प्रकाश से अन्धकार की ओर और अमरत्व से मृत्यु की ओर जा रहा है। भौतिकवाद के प्रवाह में सब बहे जा रहे हैं। आज मानव-जीवन के शाश्वत सत्यों का गला घोंटा जा रहा है। नैतिकता, आचरण की पवित्रता, चरित्र की महानता और सच्चाई से हमारा दूर का नाता होता रहा जा है। मानव स्वच्छेद होकर जीना चाहता है। पुरातन सभी जीवन-मूल्यों की उपेक्षा कर एक नवीन संस्कृति (?) के निर्माण में लग गया है यह सोचकर कि शायद विद्रोह और नवीनता ही जीवन है। वह ईश्वर अस्तित्व और व्यवस्था पर अंगुली उठाता है। आज हम पशुता के स्तर पर नीचे उतर आए हैं। भौतिकवाद और अनीश्वर-वाद आज के युग की भीषण चुनौतियां हैं। अगर आज युग को किसी वस्तु की आवश्यकता है तो धार्मिकता की है, आध्यात्मिकता की है। आज स्वार्थ त्याग को, सत्य असत्य को, कुरूपता सौन्दर्य को, मृत्यु जीवन को, और अन्धकार प्रकाश को खा जाना चाहते हैं। नास्तिकता ने चारों ओर अनास्था और लक्ष्य-हीनता फैला दी है। संसार पथ-भ्रष्ट है कि क्योंकि उसने अपने ईश्वर को ही भुला दिया है, उसे जीवन का कोई गन्तव्य ही नज़र नहीं आ रहा है।

विश्व की ऐसी विषम परिस्थिति में आर्य समाज का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है। हमें आर्य समाज को पुनः-संगठित करके उसका रूप परिवर्तित करना होगा। इसका राजनैतिक गति-विधियों से सम्बन्ध विच्छेद कर विशुद्ध आध्यात्मिकता के मंच पर लाकर खड़ा करना होगा। आज की त्रस्त, अशान्त और विवेकहीन मानवता को उचित मार्ग पर केवल आध्यात्मिकता के बल पर ही लाया जा सकता है। भटकते पथिक को जैसे किसी दूर पहाड़ी पर टिमटिमाते प्रकाश का आधार उसके गन्तव्य का निर्देशक बन जाता है उसी तरह से आज के मानव को नैतिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की अति आवश्यकता है। हमें युग की चुनौती का अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य से उत्तर देना होगा परन्तु यह तभी संभव है जब हमारे सिद्धान्त और जीवन में एकता हो, आर्य और आर्य समाज में सामंजस्य हो। समाज की आधार शिला आचार की पवित्रता, त्याग तपस्या और बलिदान पर रखनी होगी। संस्था का संचालन राजनीति से प्रभावित लोगों के हाथों से छीनकर त्यागी-तपस्वी महात्माओं, संन्यासियों को सोंपना होगा। अपने कार्य-क्रम में चारित्रिक उत्थान को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा। अगर हम अपने को संभालकर, संगठन में आई कमजोरियों को दूर कर पूर्ण समृद्ध होकर, नया उत्साह, जोश और चेतना लेकर आगे बढ़ते हैं तब तो युग की भीषण चुनौती का सामना कर सकते हैं अन्यथा हम निर्मम इतिहास की एक घटना बनकर रह जायेंगे। जिसे कोई आर्य स्वीकार न करेगा।

पाठकों के पत्र

हमारे पाठक समय-समय पर अपने विचार भेजते रहते हैं। वे इतने अधिक होते हैं कि सारे प्रस्तुत करने कठिन हैं। फिर भी जन मानस की भावनाओं के प्रकटीकरण हेतु कुछ पत्र प्रस्तुत हैं।

—संपादक

जागते रहें

पूज्य बहन,

आपका जन-ज्ञान बहुत दिनों से पढ़ रहा हूं और मैंने अपने आप में पाया कि आपकी प्यार-भरी झिड़कियों से कैसा भी सोया हुआ भारतीय आर्य जरूर जाग जावेगा। उसी प्रेरणा से हम लोगों ने यहां साहित्य बांटने का सतत कार्यक्रम बनाया है चूंकि यहाँ की आर्य समाज के पास ज्यादा पूंजी नहीं है फिर भी हर वर्ष आपको **फरवरी** महीने में १०१) एक सौ एक रुपया मैं भेजा करूंगा। आप इसको चाहे दान समझें या आहुति। आपके जुलाई और अगस्त के अंकों से और राखी के विशेष आवाहन पर यह भाई की तुच्छ भेंट और दयानन्द के सिपाही के नाते आहुति देने की भावना जागी है। आशा है ,आप इसी प्रकार आगे भी प्रेरणा देती रहेंगी और हम सिपाहियों से काम लेती रहेंगी।

भगवान सिंह
प्रधान
आर्य समाज देवलाली

प्रशस्ति-पत्र

मातृशक्ति बहन,

सादर नमस्ते।

प्रथम जब मैंने आपके जन-ज्ञान का अंक देखा तो वस्तुतः हृदय प्रसन्नता एवं आशा से भरपूर होगआ और अब तो जन-ज्ञान अपनी श्रेणी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। मुझे पूर्ण आशा है, यह अशान्ति में संतप्त भूमण्डल के समस्त मानवों के हेतु 'शान्ति का संदेशवाहक' बन सकने में पूर्ण समर्थ हो सकेगी। एतदर्थ मेरी हार्दिक शुभकामनाएं 'जन-ज्ञान प्रकाशन' के साथ हैं।

परमात्मा आपको इस परम पुनीत कार्य में पूर्ण सफलता प्रदान करे !

कानपुर **—ज्ञानप्रकाश शास्त्री**

माँ का वात्सल्य

आपके जन-ज्ञान का मई विशेषांक किसी बन्धु द्वारा पढ़ने को प्राप्त हुआ। यह अंक "मां गायत्री" सचमुच मां जैसा वात्सल्य, अपनत्व उपदेशामृत देती है।

इस अंक के लिये आपको कोटिशः धन्यवाद है।

भागलपुर **—अर्जुन प्रसाद आर्य**

क्रान्ति का संदेशवाहक

आपका भेजा हुआ नमूनार्थ "जन-ज्ञान" १५ जुलाई १९६९ का प्राप्त हुआ। आद्योपान्त पढ़ा। आपका "जन-ज्ञान" एक आदर्श पत्र है। आर्य जगत में क्रान्ति लाने वाला, वैदिक धर्म प्रचार के लिए और ईसाईयत के समूलोच्छेदन हेतु यह बड़ा कार्य करने वाला है। इसके माध्यम से जनता की महती सेवा और उसका कल्याण होगा। वर्तमान में मानव की विचारात्मक क्रान्ति लाने में यह 'जन-ज्ञान' अग्रसर होगा। हमारी शुभ कामनायें और सहयोग आपके साथ है।

—मोहनलाल आर्य
अन्तरंग सदस्य
आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश
अलीगढ़

नया उत्साह

मैंने आपके जन-ज्ञान मासिक पत्र के २ अंक पढ़े जिनको पढ़ने से मेरे अन्दर अपने देश और धर्म के प्रति एक नया उत्साह उत्पन्न हुआ और विचारों के अनुसार इस समाज में एक नई चेतना पैदा करने के लिए बहुत सामग्री इसमें मुझे देखने को मिली। वास्तव में जब तक सामाजिक क्रान्ति नहीं होगी तब तक हमारा दैनिक जीवन सुख से व्यतीत होना असम्भव है। "मां गायत्री" बहुत अच्छा अंक रहा। मैंने अपने सभी साथियों को इस अंक को पढ़ाया जिसको कई ने मांगा है।

—तुलाराम यादव
मुहमदी, आगरा

पूज्य बहन,

सादर नमस्ते।

आप द्वारा लिखित पत्र प्राप्त होने पर हृदय को अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ। पत्र के लिये आभारी हूं। जन-ज्ञान तो एक ऐसी पत्रिका है जिसको अपनाना प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य इसलिए हो जाता है क्योंकि सत्य वैदिक धर्म के प्रसार का एक मात्र साधन है। मेरा विचार है कि जितने अधिक 'जन-ज्ञान' के हम सदस्य बना सकेंगे उतना ही धर्म प्रचार में सहयोग दे सकेंगे। आप जितने श्रम एवं लग्न से इसका सम्पादन कर रही हैं इसके लिये आर्य जनता आपकी कृतज्ञ है। क्योंकि आर्य जनता का मार्ग दर्शक एवं प्रतिनिधि के रूप में उसका प्रकाशन हो रहा है। जहां 'जन-ज्ञान' द्वारा मुझे उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है, वहां आपके पत्रों द्वारा नव उत्साह का संचार इस भांति होता है जैसा कोई बार २ मुझे मेरे कर्त्तव्यों को चेता कर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा हो। मेरे प्रत्येक मित्रों ने जन-ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा भविष्य में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया।

दयाल नगर — रामपाल सिंह लाम्बा

जन-ज्ञान का प्रिय

'जन-ज्ञान' मासिक ने थोड़े समय में ही लोगों के दिलों में अपना स्थान बना लिया है। अतः दिन-प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ रहा है। परमात्मा आपके शुभ काम में सहयोग दें।

योगेन्द्रनगर — —राजकुमार

"जन–ज्ञान"–जन क्रान्ति–दूत है

महोदय ! आपकी जन-ज्ञान नामक मासिक पत्रिका जुलाई अंक १९६९ मिली। मैंने जब उसे पढ़ना शुरू किया तो इतनी चित्ताकर्षक रोचक लगी कि मैंने आज प्रातः से सायं तक पूर्ण पढ़कर उसे समाप्त कर दिया। रोचकता के कारण उसे छोड़ने की इच्छा ही नहीं हुई। अतः एक ही सांस में जैसे मैंने पढ़ लिया। इस में प्रत्येक विषय पर विद्वान् लेखकों के विचार गम्भीर और खोजपूर्ण रूप में सज्जित हो गये हैं। पढ़ते पढ़ते मैं तो आनन्द विभोर हो गया। विशेषकर संपादकीय, हमें कहने दो, वेद-शास्त्रार्थ संबन्धी विचार पढ़कर मेरा मनमयूर झूम उठा। अतएव कृपया मुझे इस पत्रिका का सदस्य बना लीजिए। संवादात्मक लेख तो अत्यन्ताकर्षक और तर्कयुक्त मालूम हुआ।

किन्तु मैं तो जन-ज्ञान को पढ़कर आनन्दाभिभूत होकर कृतार्थ हो गया। इसीलिए मैंने कुछ कविता की पक्तियां जोश में आकर लिख दी हैं सो कृपया जन–ज्ञान में प्रकाशित कर दें।

मेरे भाव स्वीकार करें !

कुर्सियों के कुचक्र में, भटके नेता लोग ।
वेद धर्म हैं दब रहा, कारण स्वार्थ–रोग ।।१।।
नेता गोता खा रहे, अन्यों की क्या बात ।
वेद का प्रचार कहां, कौन करे दिन-रात ।।२।।
वेदों के प्रचार हित, जन्मा आर्य समाज ।
वेद गया कुर्सी रही, कार्य यही बड़ आज ।।३।।
स्वार्थवश नहीं हो रहा, वेदों का प्रचार ।
कुर्सी ही जब ध्येय हो, कैसे हो उद्धार ।।४।।
दयानन्द के दीवाने, अब भी न उठे जाग ।
इससे बढ़ कर और क्या, होगा देश-अभाग ।।५।।
दयानन्द की देन का, सबको हो शुभ ज्ञान ।
कार्य यह कर पायेगा, "नाथ" का "जन-ज्ञान" ।।६।।
"जन-ज्ञान" यह पत्र नहीं, विचार-बम की क्रान्ति ।
भौतिकवादी त्रस्त को, होगी इससे शान्ति ।।७।।
भेड़ खाल में भेड़िया, कभी न होगा शेर ।
"जन-ज्ञान" जड़ काटेगा, ले क्रान्ति शमशेर ।।८।।
त्याग लगन भक्ति के बल, यश पायेंगे "नाथ" ।
"विष्णु" वेद प्रचार में, युवक सभी हैं साथ ।।९।।
जन-ज्ञान बढ़ता रहे, वेद क्रान्ति के साथ ।
दीर्घायुरारोग्य हो, "भारतेन्द्र नाथ" ।।१०।।

धारवाड़ आ० प्र०

विष्णुदत्त साहित्यालंकार

गायत्री मन्त्र का उर्दू अनुवाद

तू ने हमें पैदा किया और परवरिश करता है तू
तुझ से है कायम जिन्दगी और दुख दर्द हरता है तू
तेरा जलाल बहतरीन हर सूबसू जलवा फेशान
आलम के ज़र्रे ज़र्रे में राहत रसान आराम जहां
तेरा ही धरते ध्यान हम और मांगते हैं यह दुआ
प्रभु ओ३म् हमारी अक़ल को नेकी के रसते पर चला

कालकाजी, नई दिल्ली —धर्मपाल धवन

हार्दिक हर्ष

मुझे आपकी "जन-ज्ञान" पत्रिका का ग्राहक बन कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। यदि मैं कहूँ कि आपकी पत्रिका समस्त आर्य जगत् की पत्रिकाओं में अमूल्य व बेजोड़ है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस पत्रिका के सभी लेख, कागज, छपाई व चित्र बढ़िया व चित्ताकर्षक होते हैं। इसके विशेषांक भी वैदिक विचार-धारा से ओत-प्रोत होकर मानव-मात्र की आध्यात्मिक तृषा बुझाने में पूर्ण समर्थ हैं।

मैं चाहता हूं कि सभी हिन्दू (आर्य) इस पत्रिका के ग्राहक बन जायें पहले अपने कुटुम्ब में बच्चों, स्त्रियों व वृद्धों को पढ़ाने को प्रेरित करें ताकि पहले कुटुम्ब वाले सच्चे आर्य बन जायें और अपनी प्राचीन सनातन वैदिक धर्म, सभ्यता व संस्कृति को समझकर तदनुसार आचरण करने लग जायें तत्पश्चात् अपने पास पड़ौस वालों व अन्य सभी जनों को वैदिक विचार धारा से अवगत करायें तभी गुरुदेव दयानन्द के स्वप्न साकार हो सकेंगे और यही उस गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

मैं पूरी आशा व विश्वास से कह सकता हूं कि यह आर्य पत्रिका समस्त भूमंडल में वेद का नाद गुञ्जन व दयानन्द की विचार धारा का प्रसार व प्रचार करने में अमोघ शस्त्र साबित होगी और समस्त विश्व को एक 'ओ३म्' के झंडे के तले लाने में भी सहायक सिद्ध होगी।

अन्त में मैं आपके इस महान् प्रयत्न की सराहना किए बिना नहीं रह सकता और आशा करता हूँ कि आप भविष्य में इसे एक और नये व अच्छे रूप में निकालकर जनता-जनार्दन की सेवा कर सकेंगे।

हल्द्वानी —देवसिंह रावत

मेरा मतभेद

जुलाई मास १९६९ के 'जन-ज्ञान' अंक में पृष्ठ १८ पर 'चीर हरण' श्री मंगल विजय एम. ए. साहित्यरत्न जी को पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई कि उन्होंने चीर हरण का एक काल्पनिक चित्र अति ही सुन्दर खींचा है जिसके लिये वह बधाई के पात्र हैं। एक बात मुझे उसमें समझ नहीं आई, पंक्ति १६ में आचार को तो अछोर-चीर का रूप दिया है जब कि ंक्ति १९ में आचार को अर्जुन का रूप दिया है इस प्रकार इस कविता में अर्जुन को चीर का रूप दे दिया है जिस पर मेरा मतभेद है—

कठुआ (जम्मू) —प्रभुशूर

●

आदरणीय !

मैं आपको हार्दिक बधाई दे रहा हूं कि विकट परिस्थितियों में भी आर्थिक कठिनाइयां होने पर भी आप महर्षि का ऋण चुकाने के लिए वेद प्रचारार्थ जन-ज्ञान के रूप में मासिक पत्र द्वारा आर्य जाति को भेंट देकर भली प्रकार जीवन का संचार कर रहे हैं। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आपको चिरायु व स्वास्थ्य प्रदान करें ताकि आप इसी लग्न से कार्य करते रहें। आज सभी आर्यों में इन भावों के मरने की ही आवश्यकता है।

नसीराबाद —अमरसिंह आर्य

भटकते को राह

आपके द्वारा भेजा सुसंगठित पत्र जन-ज्ञान जो जून मास का है, मुझे प्राप्त हुआ मुझे। इतनी प्रसन्नता हुई कि कह नहीं सकता। क्योंकि मैं आर्य जगत से भटक रहा था लेकिन इस पुस्तक के मिलने पर मुझे वह ज्ञान मिला जो आर्य जगत की ओर पूर्ण रूप से खींच लिया। मैं इस अमृत रूपी पत्र को पाकर क्या बड़ाई करूं। आपका प्रयास प्रशंसनीय हैं।

सिकन्दरपुर —ज्ञानप्रकाश

●

निराला जोश

आदरणीय सम्पदिका जी,

आपके "जन-ज्ञान" पत्रिका को देखा। मेरे आर्य बन्धु के पास उसमें आपने लेखकों के द्वारा हमारे आर्य बन्धुओं में नया जोश भर दिया, ईश्वर करे इस पत्रिका के लेखकों की कलम इस प्रकार से चलती रहे ताकि हम जैसे आर्य बन्धु अन्धेरे से निकल हमारे अन्य भाइयों को प्रकाश में लायें। आधुनिक युग में इसी प्रकार की आर्य पत्रिका की कमी थी उसको आपने पूरा किया। वास्तव में इस पत्रिका ने साहस का परिचय दिया, आपका प्रयास सराहनीय हैं।

नसीराबाद —ओम् प्रकाश

बधाई--पत्र

हे तपस्वी आर्य नेता वेद की पकड़ी डगर।
आपका शत बार स्वागत आज हे प्रज्ञाप्रवर॥

ऋषि दयानन्द के सिपाही वीर हो तुम,
कर्म योगी धर्म निष्ठ — सुधीर हो तुम,
ऋषि मिशन की साधना में कष्ट हैं तुमने उठाये,
बढ़ गये आगे कभी पीछे नहीं थे पग उठाये,

पाखंड की छाई तमिस्त्रा से कर रहे हो तुम समर।
आपका शत बार स्वागत आज हे प्रज्ञाप्रवर॥

आर्य जगती में तुम्हारा आज है आलोक छाया,
आपने "जन-ज्ञान" से फिर वेद का संदेश गाया,
तुम थामना अब ओम् की पावन पताका झुक न जाये,
ऋषि मिशन के सैनिकों की गति अब रुक न जाये,

आर्य गण हृदयेश तुमको प्राप्त है प्रतिभा प्रखर।
आपका शत बार स्वागत आज हे प्रज्ञाप्रवर॥

वेद-ज्योति आपने जन-ज्ञान की जो है जलाई,
इसलिये भारतेन्द्र जी शत बार है तुमको बधाई,
आपसे मिलता रहे जन-ज्ञान का संदेश हमको,
शब्द श्रद्धा के सुमन करते समर्पित आज तुमको,

ऋषि मिशन में आपकी यह साधना होगी अमर।
आपका शत बार स्वागत आज हे प्रज्ञाप्रवर॥

आर्य समाज हथमऊ — दर्शनसिंह चौहान

इन बधाई पत्रों से काम नहीं चलेगा अब तो काम करने की आवश्यकता है और दयानन्द के स्वप्नों को पूरा करने के लिए मरने के लिए तैयार वीरों की —सम्पादक

स्तुत्य प्रयास

श्रीमान सम्पादक जी,

आपके कुशल सम्पादकत्व में संपादित जन-ज्ञान के अंक प्राप्त हो रहे हैं। इस माह 'वेद ज्योति विशेषांक' हस्तगत हुआ। आपने श्री स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती द्वारा लिखित 'वेद ज्योति' ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ को जन-ज्ञान के विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर विश्व के सामने वेदभाव का सच्चा आदर्श उपस्थित कर दिया है। वेद ज्योति में वेदोदधि के चुने हुए मौक्तिकों का सुन्दर शब्दार्थ तथा भावार्थ सहित संग्रह है जो प्रत्येक वेद प्रेमी आर्य परिवार के लिए बहुत ही उपादेय है। साधारण शिक्षित लोग भी इसका अध्ययन कर जीवन को सफल बना सकते हैं। हमें तो इससे वेद प्रचार में काफी सहायता मिली है तथा स्वयं को शान्ति का अनुभव हुआ है। आपके परिश्रम से अंक सुरुचिपूर्ण तथा प्रेरणाप्रद बन पड़ा है। विश्व में शान्ति स्थापनार्थ वेद का संदेश पहुँचना अनिवार्य है। इस हेतु आप वेदोद्वार का महान् कार्य कर रहे है। प्रस्तुत अंक इसका ज्वलन्त प्रमाण है। आशा है आप इसी लगन के साथ और भी अनेक महत्वपूर्ण विशेषाँक प्रकाशित कर मानव जाति का बहुत बड़ा उपकार करते रहेंगे। इस पुनीत कार्य के लिए सभी आर्य बन्धुओं का सहयोग प्रार्थनीय है। कृपया आप मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

वढ़ता रहे प्रगति के पथ पर यह
सबका प्यारा जन ज्ञान।
वेदज्योति फैला दे जग में हो
मानव का स्वर्ण विहान।

गंगाजमुनी **सत्यनारायण द्विवेदी**

सर्वांग सुन्दर

महोदय

भवत्प्रेषित "माँ गायत्री" विशेषांक प्राप्त हुआ। अंक सर्वांग अत्युत्तम है, मानव जीवन को सुख शान्ति की ओर ले जाने वाला है। वैसे तो सभी लेख उत्तम एवं उच्च कोटि के हैं, किन्तु श्री पं० मदनमोहन जी विद्यासागर का लेख तो अत्यन्त हृदयस्पर्शी है, एवं अभ्युदय और निःश्रेयस् को सरलता से समझने और हृदयंगम करने का उत्तम साधन है। अतः ऐसा सुन्दर उत्कृष्ट जीवनोपयोगी अंक निकालने के लिये आपको शतशः बधाई। परम प्रभु से प्रार्थना है 'जन-ज्ञान' की उत्तरोत्तर उन्नति करे जिससे आप महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार कर सकें। अन्य सभी अंक उपादेय हैं। ग्राहक बढ़ाने का प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है।

भिरोर **—रामकुमार आर्य**

आशीर्वाद

प्यारी पुत्री !

आपका जन ज्ञान का जुलाई अंक मिला। वैदिक भक्तिवाद पढ़कर मुझे पुत्री शान्ति देवी शास्त्री ने सुनाया।

मैं चाहता हूं कि यह महान कार्य जो आपने शुरू कर रक्खा है इसी शान से चलता रहे। ईश्वर आपको सफलता दें।

—ईश्वरदास कपूर

आदरणीय बहन,

जून मास का अंक प्राप्त हुआ। सम्पादकीय लेख पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपके द्वारा दिया गया उद्बोधन जनसाधारण के लिए सामयिक श्रेष्ठतम मार्ग दर्शन है । आपका प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है। मेरी परम पिता परमात्मा से अहोरात्र यही प्रार्थना है कि वह आपको इस कार्य में हर प्रकार से सामर्थ्य प्रदान करे। भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित इस-ज्ञान यज्ञ द्वारा आप भारत का महान उपकार करने में प्रयत्न-शील हैं। इस सम्बन्ध में आपकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। प्रभु आपको सब प्रकार से शान्ति प्रदान करें जिससे आप अपने सत् संकल्प में पूर्ण सफलता शीघ्र अति शीघ्र प्राप्त कर सकें।

उधेड़ **उ. रैना**

दयानन्द की ओर

आदरणीय बहन।

जब से मैं आपके जन-ज्ञान का सदस्य बना हूँ। ६५ वर्ष की आयु में प्रभु की गोद में जा बैठा। मुझे महसूस होता है आपका आभार मुझ पर इतना है अपने जीवन भर पूरा करने में असमर्थ हूँ। मेरा जीवन हैदराबाद गुलबर्गा की जेल में धुरन्धर विद्वानों के साथ बीता। १९४१ में सत्याग्रह में १९४२ भारत छोड़ो नारा लगाने में १९४५ तक जेल में बड़े राज नेता बड़े विद्वानों का ज्ञान प्राप्त हुआ परन्तु आपके जन ज्ञान ने मुझे और पीछे को घुमा दिया श्री दयानन्द के चरणों की ओर।

आपका वन्धु

दयानन्द का अभारी है।

बहादुराबाद **रामस्वरूप आर्य**

आदर्श

महोदय,

आपके जून मास के जन-ज्ञान में पृष्ठ ३४ पर आपका श्री नरेन्द्र पुण्डीर के प्रति हार्दिक अभिनन्दन तथा श्री नरेन्द्र पुण्डीर का पाठकों से निवेदनपत्र पढ़ कर हृदय के अन्दर अत्यन्त उत्साह हुआ। प्रत्येक आर्य युवक श्री नरेन्द्र पुण्डीर का अनुसरण करे तो सत्य सनातन वेद ज्ञान का सन्देश संसार के प्रत्येक जन-जन तक अति शीघ्र पहुँच जायेगा और दुनिया के लोग वैदिक मार्ग की राह पर चल कर इस भू खण्ड को सर्वनाश से बचा कर इसे सत्य, प्रेम और करुणा के ढाँचे में परिवर्तित कर देगें। मैं उनके निवेदन पत्र से अत्यन्त प्रभावित हूँ। अपने परि-वार बन्धुओं और मित्रों को शीघ्र ही 'जन-ज्ञान' का सदस्य बनाने के लिए बाध्य करूंगा।

आगरा **रामपाल सिंह**

मान्यवर !

आप बड़ी लग्न और उत्साह से वैदिक धर्म के प्रचार का प्रसार और साहित्य प्रकाशन का सराहनीय वा प्रशंसनीय शुभ कार्य कर रहे हैं हमारी ओर से धन्यवाद के पात्र हैं ईश्वर आपको इससे भी अधिक शक्ति प्रदान करे।

सिघावांबेट **—भक्तराम शर्मा**

जर्मन की महिला अन्ना डोरथी का संस्मरण

नेता जी सुभाष की स्मृति

हम लोग कॉफी पी रहे थे—साथ-साथ बातचीत भी होती जा रही थी। बड़ा आत्मीयतापूर्ण वातावरण था। साथ ही, हमारी चर्चा के विषय भी ऐसे थे, जो उबाने की जगह उत्सुकता पैदा करते थे। सामान्यतः ऐसे अवसरों पर होनेवाली बातचीत को 'हल्की बातें' कहा जाता है। लेकिन मेरा अनुभव कुछ दूसरा ही है। ऐसे अवसरों पर होनेवाली बातचीत से मैंने प्रायः अजर-अमर चीज ही पाई है! उस दिन की बातचीत में भी यही हुआ—उस दिन मुझे एक ऐसी निधि मिली, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकूँगी!

दक्षिणी जर्मनी में ब्रेंज नदी के तट पर बसे हाइंडेनहिम नगर में यह काफी-पार्टी चल रही थी, अपराह्न-बेला में। हमारे मेजबान थे, एक यहूदी इंजीनियर, जो अभी-अभी, दो वर्ष पूर्व ही, रूसी कारागार से, स्वास्थ्य खराब होने के कारण, रिहा किये गये थे। उनकी पत्नी एक समय मेरे साथ पढ़ती थी, जिसके कारण मेरा उस परिवार से बहुत मेल-

नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस का यूरोप में लिया गया चित्र

जोल हो गया था।

हमारी बातचीत का विषय हर कुछ मिनटों के बाद बदल जाता था, जैसा कि ऐसे अवसरों पर सामान्यः होता ही है। कई अन्य विषयों से उलझने के बाद, हम फील्ड-मार्शल रोमेल के दुःखद अंत पर टीका-टिप्पणी करने लगे। मार्शल रोमेल बीसवीं सदी के योग्यतम सेनापति थे—यहाँ तक कि, शत्रु भी उनकी रण-कुशलता की प्रशंसा करते थे। उनके प्रति हमारे सम्मोहन का एक दूसरा कारण यह भी था कि, वे हाइडेनहिम के ही निवासी थे। जब मैं स्कूल में पढ़ती थी, तब प्रायः ही उनकी मां और बहन से मिलने जाती थी। उनकी बहन बचपन से ही मेरी सहेली रही है और अभी वह स्टुटगार्ट के प्रसिद्ध वाल्डर्फश्यूल में शिक्षिका है।

रोमेल की विधवा पत्नी एवं पुत्र ने जब उनकी डायरी और अन्य कागज-पत्रों को प्रकाशित करवाया, तो बाजार में जैसे धूम मच गई। इसी उपलक्ष में पिछली गर्मियों में हाइडेनहिम के मेयर ने श्रीमती रोमेल के सम्मान में एक प्रीतिभोज का आयोजन भी किया था; पर इन सारी प्रतिष्ठाओं के बावजूद, वे उस आध घंटे के समय को नहीं भूल पातीं, जिसका सामना उन्हें खून का घूंट पीकर करना पड़ा था। वह घड़ी उनके पास उल्म के निकटस्थ हर्रलिगन-नामक गाँव में आई थी, जहाँ उन्होंने अपना नया मकान बनवाया था और जहाँ वे सपरिवार रहा करती थीं। नाजियों ने एक दिन अकस्मात् उस गांव को घेर लिया था और फील्ड-मार्शल के समक्ष यह प्रस्ताव रखा था कि, या तो वे जहर खाकर आत्महत्या करें, अन्यथा सारे गाँव की उनके परिवार-सहित —बर्बादी के लिए जिम्मेदार बनें। युग के वीर-शिरोमणि फील्ड-मार्शल ने पहला प्रस्ताव ही पसन्द किया!

इस विषय के खत्म होते-न-होते अकस्मात् एक मित्र ने मुझसे प्रश्न कर दिया—"आप कभी महान् भारतीय नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस से भी मिली हैं ?··· तो श्रीमती उंटशर से भी शायद आप नहीं मिली होंगी! वह हम लोगों के पास में ही तो रहती हैं। नेताजी को जो पनडुब्बी-जहाज ब्रेमरहेफन से सिंगापुर लाया था, उसका चालक श्रीमती उंटशर

नेताजी

सुभाष बाबू की महत्वपूर्ण सफलताओं में, भारत के बाहर के उस समय के कार्य हैं, जब वे देश से भागे और काबुल, इटली, जर्मनी और अन्य देशों से होकर जापान पहुँचे।

उस काल का उनका सबसे महान् और स्थिर रहनेवाला कार्य था, सब प्रकार के जातीय और वर्ग-सम्बधी भेदों का उन्मूलन। वे केवल बंगाली ही नहीं थे। उन्होंने अपने-आपको कभी सवर्ण हिन्दू नहीं समझा। वे आमूल भारतीय थे। उन्होंने अपने अनुयायियों में भी यही आग प्रज्ज्वलित की, जिससे प्रेरित होकर वे भी सभी भेद-भाव भूल गये और एकसूत्र होकर काम करने लगे। —**गांधीजी**

का बेटा ही था !"

...बातचीत का प्रसंग आगे बढ़ा, तो ज्ञात हुआ कि, सिंगापुर पहुँचने के बाद नेताजी और उनके सहायक को जापानी पनडुब्बी के लिए कई दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। फर्डिनेंट उंटशर नेताजी के व्यक्तित्व से, जो उसके लिए अपरिचित थे, बहुत ही प्रभावित हुआ था और उसने अपनी पनडुब्बी पर नेताजी और उनके सहायक की, उनके अज्ञान में ही, तसवीर भी उतारी थी। काफी दिनों के बाद, उसे उस व्यक्तित्व की वास्तविक जानकारी प्राप्त हुई और तब उसकी समझ में यह बात आई कि, उतने गुप्त रूप से उन्हें क्यों भेजा गया था। फिर उसके बाद नेताजी यूरोपीय सागर-क्षेत्र में कभी नहीं आये और उंटशर-द्वारा उतारी गई तसवीर ही यूरोपीय क्षेत्र में नेताजी की अंतिम तसवीर प्रमाणित हुई।

घर लौटने के बाद, फर्डिनेंड ने वह तसवीर अपनी माँ को दे दी और उसे सुरक्षित रूप से—पवित्र स्मृति के रूप में—रखने का निर्देश दिया। साथ ही, वह यह चेतावनी देना भी नहीं भूला कि, युद्धकाल में चित्र की चर्चा भूल कर भी किसी से नहीं की जानी चाहिए। उसके बाद जब वह फिर देश से बाहर गया, तो वापस नहीं लौटा !

...इतना सब सुनने के बाद मैं उस महिला से मिले बिना भला कैसे रह सकती थी। मैं उससे मिली और खूब हिलमिल गई। अंत में, एक दिन उस महिला ने मुझे वह तसवीर दी और कातर स्वर में कहा—"मैं चाहती हूँ कि, इस तसवीर को भारतवासी एवं नेताजी के मित्र देखें। तुम कर सकोगी ऐसा ? इस चित्र से संसार को भारत के एक अजेय सेनापति का एक बार स्मरण हो आयेगा; पर तुम तो जानती हो, इस चित्र में मेरे लिए दो स्मृतियाँ हैं—एक नेताजी की और दूसरी मेरे बेटे फर्डिनेंड की, जिसने मेरे स्तन्य को धन्य किया था !

पत्नी ने रुपये क्या मांग लिए, पति ने आसमान सिर पर उठा लिया, "रुपये ! रुपये ! ! हर वक्त रुपये ! मैं कहता हूं रुपये से अधिक तुम्हें अक्ल की जरूरत है !"

"मगर तुमसे वही चीज तो मांग सकती हूं, जो तुम्हारे पास हो !" पत्नी ने उत्तर दिया।

●

"तुम मूर्ख हो।" पहले वकील ने कहा।

"तुम महामूर्ख हो।" दूसरे वकील ने कहा।

"इसके बाद कि वकील साहाबान ने अपना परिचय एक दूसरे को दे दिया, अदालत की कार्रवाई आगे बढ़ायी जाये।" जज ने कहा।

●

दिल्ली के इण्टरकॉण्टिनेण्टल होटल में लिफ्ट पर पहली बार चढ़ने वाली महिला ने पहले २ फिर ६ और फिर ३ नम्बर वाले स्विच दबाये। उसके साथ जाने वाले दूसरे युवक ने कारण पूछा तो बड़े अभिमान से उसने कहा, "मुझे २६३ नम्बर कमरे में जाना है।"

●

प्रसिद्ध अमरीकी हास्यकार मार्क ट्वेन ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान नदी किनारे धोबियों को देख पूछा, "क्या ये लोग अपने कपड़ों से पत्थरों को तोड़ने का काम कर रहे हैं ?"

अराष्ट्रीय ईसाई तत्वों को समाप्त करने के लिए प्रभावशाली साहित्य बांटिए

१. ईसाई पादरी उत्तर दें।	३) सैंकड़ा
२. A challange to the christian Faith	३) सैंकड़ा
३. Bible in the Balance	२० पैसे १५) सैंकड़ा
४. ज्ञान-विज्ञान का शत्रु ईसाई मत—१३ पैसे	१०) सैंकड़ा
५. पोप की सेना का भारत पर हमला—१५ पैसे	१०) सैंकड़ा
६. ईसाईयों की प्रचार प्रणाली—१३ पैसे	१०) सैंकड़ा
७. पादरियों को चुनौती—१५ पैसे	१०) सैंकड़ा
८. बाइबिल को चुनौती—२० पैसे	१५) सैंकड़ा
९. और पादरी भाग गया—१५ पैसे	१०) सैंकड़ा

अधिक से अधिक मंगाकर बाँटें

१. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी अंग्रेजी)

हिन्दी और अंग्रेजी में एक साथ, प्रत्येक शब्द की अन्वय सहित व्याख्या : अंग्रेजी और हिन्दी में। मूल्य २ रु०। सजिल्द का मूल्य २॥ रु०।

२. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी)

(केवल हिन्दी में) इसमें प्रत्येक मंत्र के साथ उसका अर्थ दिया गया है। २८ पौंड बढ़िया कागज, तिरंगा बढ़िया आवरण, महर्षि का तिरंगा चित्र। २८ पौंड कागज, चुने हुए भजन।

८० पृष्ठ मूल्य ५० पैसे। ४०) सैंकड़ा

३. Ten Commandments of the Arya Samaj

जिसका मूल्य पहले १ : ५० था अब केवल एक रु० प्रति ७) ५० की १० प्रतियां मिल रही हैं।

लाखों की संख्या में बांटिए

योगेश्वर कृष्ण का आदर्श जीवन-चरित्र

ब्र० जगदीश विद्यार्थी एम. ए. द्वारा लिखित

आवरण पर तिरंगा—आकर्षक चित्र।

योगीराज कृष्ण के हाथ में तलवार देखकर आप भी फड़क उठेंगे

मूल्य ३० पैसे। २५) सैंकड़ा १२०) हजार

जन-ज्ञान प्रकाशन

१९५७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

गो रक्षा के लिए क्या आप कुछ करेंगे ?

बन्धुवर, गत दिनों आपने दैनिक अखबारों एवं देश के अन्य भागों से प्रकाशित समाचारपत्रों के द्वारा जान लिया होगा कि आर्य समाज कलकत्ता अपनी रुचि व कर्तव्य-निष्ठा की गरिमापूर्ण परम्परा के अनुकूल एक महान सेवा कार्य में जुटा हुआ है।

पश्चिम बंग सरकार के दुग्ध आपूर्ति केन्द्र क्रमशः हरिनघाटा व कल्याणी से प्रति वर्ष प्रायः ४००० गायें, बछड़ी, एवं बछड़े नीलाम किये जाते हैं। इसके लिए लगभग ३ लाख रुपये की आवश्यकता होगी। इनमें से अधिकांश की नसल अच्छी व उपयोगी भी होती है। आपको विदित ही है कि इनमें से अधिकतर पशु कसाइयों द्वारा खरीद लिए जाते हैं। इस कार्य को बन्द कराने हेतु आर्य समाज ने एक कार्यक्रम बनाया है। कार्यक्रम का प्रथम चरण गत दि० ८ जुलाई १९६९ को ४४०००) रुपयों से कल्याणी केन्द्र से कुल ६६१ पशु (जिनमें ४१७ गायें एवं २४४ बछड़े हैं) हस्तगत कर स्थानीय कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी को देकर सम्पन्न किया है। इस तरह भविष्य में नीलाम बन्द करवाकर सारे पशु लेने का निर्णय आर्य समाज ने किया है।

पश्चिम बंग सरकार से विशेष अनुरोध एवं सम्पर्क कायम कर इन पशुओं को लेने के लिए कम से कम कीमत लगे इसकी व्यवस्था की गई है। सरकार इन पशुओं को नीलाम से आधी कीमत पर देने के लिए राजी हो गई है एवं इस तरह पूर्ण सहयोग एवं सौहार्द का प्रदर्शन किया है।

यह कार्य निर्बाध गति से किया जा सके इसके लिए एक कमेटी के गठन का निश्चय भी आर्य समाज ने किया है। यह शीघ्रातिशीघ्र गठित की जाएगी।

अति शीघ्र द्वितीय चरण को भी सम्पूर्ण करने का संकल्प किया गया है। इसके लिए ७०००) रुपयों की आवश्यकता है। इस रकम द्वारा कुल १०२ पशु लिए जायेंगे। अतः आप महानुभावों से प्रार्थना है कि इस पुनीत कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोग प्रदान करें।

ये प्राप्त किये जानेवाले पशु कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी को दिये जायेंगे। अगर कुछ पशु सोसाइटी लेने में अपने को असमर्थ पाती है तो उन्हें लेने को उत्तर प्रदेश और बिहार की अनेक गोशालायें तैयार हैं। इस आशय के पत्र भी हमें मिल चुके हैं। जो सज्जन प्रथम चरण में प्राप्त पशु देखना चाहें वे कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी के अधिकारियों से सम्पर्क कर कचड़ापाड़ा केन्द्र में उन्हें देख सकते हैं। आपको ताज्जुब होगा कि इन पशुओं में से अधिकतर गायें गर्भवती होकर दूध देने लायक हैं जबकि बछड़े सुन्दर सांड या बैल बन सकते हैं।

आशा है आप लोगों का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

—छबीलदास

मंत्री आर्य समाज विधान सरणी कलकत्ता

वेद प्रचार यज्ञ में आहुति देने वाले

दानियों की सूची

'जन-ज्ञान' द्वारा आरंभ वेद-प्रचार के पवित्र यज्ञ में हमें निम्न महानुभावों की आहुतियां प्राप्त हुई हैं। हम हृदय से इनके आभारी हैं—प्रभु हमें बल दें कि हम सब की भावनाएं पूरी कर सकें।

—संपादक

१.	रायसाहिब चौ० प्रतापसिंह जी करनाल	...	१२००.००
२.	प्रो० सन्तराम एम० एस० सी दिल्ली	...	६००.००
३.	महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज	...	१००.००
४.	ला० मेलाराम जी दिल्ली	...	१०१.००
५.	श्री आर० सी० थापर दिल्ली	...	२५०.००
६.	पं० आनन्द प्रिय जी बड़ौदा	...	२००.००
७.	श्री सेठ चैतन्यदास आसवानी सूरत	...	१०१.००
८.	श्री भगवान देव शर्मा टंकारा	...	१००.००
९.	श्री जयचन्द जी आर्य झांसी	...	१०१.००
१०.	श्री मोहन क्लाथ स्टोर जालना	...	२२.००
११.	श्री गौरीशंकर गुप्त गढ़वा	...	१०१.००
१२.	श्री रघुनन्दन स्वरूप गोयल मेरठ	...	५००.००
१३.	श्रीराम औतार जी महावर ब्रदर्स दिल्ली	...	२५०.००
१४.	श्रीमती तृप्ता जी चकशेरां वाला	...	११.००
१५.	द्वारा श्री सत्यपाल जी	...	११.००
१६.	ब्र० जगदीश जी विद्यार्थी एम० ए० दिल्ली	...	१०.००
१७.	श्री शांति प्रसाद जी रामपुर	...	२.००
१८.	श्री गिरिधारी लाल जी कैथल	...	१०.००
१९.	श्री जसुभाई चतुरभाई अहमदाबाद	...	५.००
२०.	आर्य समाज जामनगर	...	५.००
२१.	श्री सुमेरचन्द्र जी बहादुराबाद	...	२.००
२२.	महाशय जिलेसिंह टंडढ़ा	...	२.००
२३.	श्री रामलाल जी अग्निहोत्री लखनऊ	...	२५.००
२४.	श्री दलीप वेदालंकार बड़ौदा	...	५०.००
२५.	श्री कृष्णलाल जी एडवोकेट सहारनपुर	...	१०.००
२६.	श्रीमती कौशल्या देवी जी अमृतसर	...	१०.००
२७.	डा० रूपचन्द जी अमृतसर	...	१०.००
			३७८९.००

		३७८९.००
२८. श्री प्रकाश चन्द जी नादौन	...	१०.००
२९. श्री जयन्त कोटय्या पोरबन्दर	...	२.००
३०. श्री भगवानदास जी दिल्ली	...	५.००
३१. श्री रामकृष्ण जी इलाहाबाद	...	१.००
३२. आर्य समाज छोटी सादड़ी	...	५.००
३३. श्री कन्हैयालाल गोरखपुर	...	१०.००
३४. श्री मुन्नीलाल जी नवां शहर	...	५.००
३५. श्री लक्ष्मणदास सेठी दिल्ली	...	५.००
३६. श्री भक्तराम जी सिधवां बेट	...	२.००
३७. श्री सच्चिदान्द जी हज़ारी बाग	...	२०.००
३८. पी० राजगोपाल जी भोपाल	...	५.००
३९. श्री रामसरोज, बगहा	...	५.००
४०. श्री रामपाल सिंह हापुड़	...	१.००
४१. श्री शिवदयाल आर्य आमला	...	१.००
४२. श्री रामपालसिंह खांडा	...	५.००
४३. आचार्य जी गुरुकुल सूपा	...	११.००
४४. श्री जगदीश चन्द्र आंतरी	...	२.००
४५. श्री गंगाराम जी हैदराबाद	...	७.००
४६. श्री माणिकराम जी लातूर	...	५.००
४७. श्री आर्य उत्तम साहू अहमदाबाद	...	५.००
४८. श्री जयन्त कुमार जी	...	३.२५
४९. श्री राजेन्द्र प्रसाद जी वाराणसी	...	१.००
५०. श्री सोहनलाल जी गढ़मुक्तेश्वर	...	५.००
५१. श्री गौरीशंकर जी गढ़वा	...	१००.००
५२. श्री वीरेन्द्र जी दैनिक प्रताप जालंधर	...	१००.००
५३. श्री सुन्दरलाल जी खतौली	...	१०.००
५४. श्री मांगीलाल दीपल्या	...	२.००
५५. श्री ओम् साइकिल मार्किट दिल्ली	...	५.००
५६. श्रीमती बालारानी जी बुढ़ाना	...	१०.००
५७. श्रीमती लीलाकृष्ण चौधरी पानीपत	...	२०.००
५८. आर्य समाज हमीरपुर	...	३.००
५९. श्री रेवाशंकर आर्य	...	५.००
६०. श्री बल्देव वानप्रस्थी चांदपुर	...	११.००
		४१७६.२५

		४१७६.२५
६१. श्री लक्ष्मी नारायण आर्य खानपुर	...	३.००
६२. श्रीमती वेदकुमारी जी सहारनपुर	...	५.००
६३. श्री बिहारीलाल जी इलाहाबाद	...	५.००
६४. श्री साधुसिंह वोह	...	५.००
६५. श्री माधव जी पोरबन्दर	...	१.००
६६. श्री केदारनाथ जी खंडवा	...	११.००
६७. श्री रामकिशन रमेशचन्द्र सरैयागंज	...	११.००
६८. श्री रमेशचन्द्र जी गोंडा	...	१.२५
६९. श्री कृष्णलाल जी नया नांगल	...	५.००
७०. श्री हरिश्चन्द्र सूर्यवंशी औराद	...	१०.००
७१. श्री बी० एच० शिवानी तहसीलदार	...	२५.००
७२. श्री मुंशीराम जी जबलपुर	...	१०.००
७३. श्री युगलकिशोर भैरमपुर	...	२.००
७४. श्री रामयतनलाल लखावर	...	१०.००
७५. ला० प्रभुदयाल तिलहर	...	५.००
७६. श्री जगतनारायण भल्ला पट्टी	...	२.००
७७. श्री एच० धर्मपाल बाल्हेनूर	...	५.००
७८. श्री मोहनदास जी जालना	...	२०.००
७९. श्री शेषराम भुंवारना	...	३.००
८०. श्री संतलाल जी हिसार	...	१०.००
८१. श्री मन्नीलाल आर्य कुंवरपुर	...	५.००
८२. श्री शुगनचन्द आर्य गोहाटी	...	२१.००
८३. श्री रामगोविन्द हजारी बाग	...	५.००
८४. श्री कवकोटी वीरैय्या हैदराबाद	...	२०.००
८५. श्री भंवरसिंह जी चांदपुर	...	१०.००
८६. आर्य समाज आर्यपुरा सब्जीमंडी दिल्ली	...	१०.००
८७. श्री जी० सी० तनेजा दिल्ली	...	११.००
८८. श्री हरवंशलाल नई दिल्ली	...	५.००
८९. श्री ब्रिस्टल ट्रेडर्स दिल्ली	...	१०.००
९०. श्री रूपराम बहादुराबाद	...	२.००
९१. श्री जयदेव भाई आर्य बंबई	...	५०.००
९२. वेद प्रचार समिति जर्वे	...	१४.००
९३. श्री विश्वनाथ दत्त इलाहाबाद	...	२.००
	योग	४५९०.५०

मुद्रक-प्रकाशक-संपादक श्रीमती राकेश रानी द्वारा १९५७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५ से प्रकाशित। तथा रायसीना प्रिंटरी, दिल्ली-६ में मुद्रित।

आर्य कन्या महा विद्यालय बड़ौदा के वार्षिक उत्सव पर

भाषण देते हुए श्री मंगल सैन चोपड़ा मंत्री आर्य समाज सूरत। पास में नगर के प्रसिद्ध सेठ श्री चैतन्य देव आस्वानी बैठे हैं

* * * *

गायत्री महा यज्ञ का प्रभावपूर्ण दृष्य

जन-ज्ञान (मासिक) सितम्बर, १९६९
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग,
नई दिल्ली-५ रजिस्टर्ड नं० डी० १६३१

आर्य कन्या महा विद्यालय बड़ौदा में पिछले दिनों श्रीमती ललिता देवी शास्त्री पधारीं। उनके साथ उत्तर प्रदेश के भूत पूर्व गवर्नर श्री विश्वनाथ दास जी भी खड़े हैं। पास में उनके साथ ही संस्था के संचालक पं० आनन्द प्रिय जी भी हैं।
संपादक

•

३१ अक्टूबर तक 'जन-ज्ञान' के अधिक से अधिक सदस्य बनाइए। १ नवम्बर १९६९ से वार्षिक शुल्क १०) होगा। सदस्य बनने में शीघ्रता करें।
संपादक